प्रार्थना

हे सप्त भू नव खंड रवि शशि आदि आदि चराचरम् ।
विश्वानि देव सदेव देवम् एकमेव गुणागरम् ॥
सर्वस्य जगदाधार जाननहार व्यापक सर्वकम् ।
सवितर विधाता सर्व अन्त प्रकाशस्य प्रकाशकम् ॥
प्रभु आप मम त्रय ताप शाप विलाप जग कारण करण ।
दुरितानि खान परासुव अथवा व्यथा कीजै हरण ॥
यदि सत्य भद्रं मुक्ति पथ अङ्कित सुमति चित दीजिये ।
कल्याण पद अर्थात् तन्न कृपाल आसुव कीजिये ॥

विषय-सूची

संख्या	विषय			पृष्ठ
१	ईश्वर कैसे प्राप्त हो	...	....	१
२	आत्म-बोध	....	...	४
३	अध्यात्म विद्या	....	...	७
४	प्रकृति	...	....	८
५	विद्या	...	...	१३
६	विना विचारे कार्य न करना चाहिये		...	१४
७	वंचक	...	....	१५
८	ख़ुदा बड़ा ही वेवकूफ़ है	...	...	१७
९	शुतुर वे मोहार	...	...	१८
१०	पंचों की राय सिर पर ; पर पनाला यहीं रहेगा			१९
११	धन में सुख नहीं	...	...	२१

संख्या	विषय			पृष्ठ
१२	आयु को वृथा मत खोओ	...	...	२२
१३	नंगा ख़ुदाई से चंगा	...	...	२४
१४	कलयुगी पंडित	...	...	२५
१५	बनावटी महात्मा	....	....	२६
१६	कथा के बैंगन और हैं	...	....	२८
१७	बेसमझी से कार्य की आशा कैसी		....	२९
१८	हाथी परखैं भुवन चमार	....	...	३०
१९	अजीब भक्ति	....	....	३१
२०	त्रिया चरित्र जानै नहिं कोय खसम मारिकै सत्ती होय	...	...	३२
२१	यह अंधेर कब तक चली जब तक चली तब तक चली...		...	३४
२२	मन में है सो हैहै	...	...	३५
२३	चुगुलख़ोर	....	...	३६
२४	ईश्वर-भक्ति	...	....	३८
२५	बुरी शिक्षा का फल	....	....	४१
२६	पातिव्रत	...	....	४१
२७	असत्ती	....	....	४२
२८	विचित्र तार्किक	....	...	४३
२९	सहन-शक्ति	...	....	४३
३०	किसी को तुच्छ मत समझो	...	...	४४

संख्या	विषय			पृष्ठ
३१	बुद्धिमानों की जमात	...	....	४४
३२	डबल बेवक़ूफ़	...	....	४५
३३	पादरी साहब	....	...	४६
३४	अपनी औक़ात को न भूलना		...	४६
३५	शैतान के चचा	....	....	४७
३६	दो ब्याह	....	....	४८
३७	अनाथ-रक्षा	...	...	४८
३८	विधवाओं की दशा	...	...	५०
३९	दहेज से हानि	....	...	५२
४०	लम्बरदारी का पट्टा	...	...	५३
४१	संसार-वृक्ष	...	...	५४
४२	अकाट्य ब्रह्मचर्य्य	....	...	५५
४३	अनोखी सती	...	...	५७
४४	अनोखा जती	....	....	५८
४५	कुशिष्य में विद्या की सुफलता		....	६०
४६	संस्कृत शब्दों की विलक्षणता		...	६१
४७	वृकोदर	...	....	६२
४८	जप	...	....	६३
४९	अहोबलजी शास्त्री	...	....	६५
५०	पं० गदाधर भट्ट	...	...	६७
५१	अयुक्त जमात और ईर्ष्या	...	...	६८

संख्या	विषय			पृष्ठ
५२	जैसे को तैसा मिल जाता है ...		...	६६
५३	अद्भुत तपस्या	...	...	७१
५४	जान है तो जहान हैं	...	....	७२
५५	तुम्हारी क़ीमत प्रभु के साथ है		....	७३
५६	धूर्तता	...	...	७४
५७	बाबू लोगों की संख्या	...	...	७५
५८	तहज़ीब	...	...	७७
५९	लाल बुभक्कड़	...	....	७७
६०	अपनी इज्ज़त अपने हाथ है		...	७८
६१	बड़ा कौन	...	...	८०
६२	मुजपुरिया	....	...	८१
६३	सेर का सवा सेर	...	...	८१
६४	शक से ख़राबी	...	...	८३
६५	दमड़ी दान	...	....	८६
६६	मृत्यु से शिक्षा	...	...	८७
६७	आवागमन (१)	...	....	८६
६८	आवागमन (२)	...	...	६१
६९	आवागमन (३)	...	...	६२
७०	बेसमय भाषण	...	...	६३
७१	पराया धन रखने से हानि ...		...	६४
७२	आदाब व अलक़ाब के साथ वार्ता		...	६५

संख्या	विषय			पृष्ठ
७३	दानेदार दुश्मन नादान दोस्त ...		...	९६
७४	धन से प्रयोग	...	...	९७
७५	मेल	...	...	९७
७६	मातृपितृ-भक्ति	...	...	९७
७७	भरतखंड	...	...	१०३
७८	काम	...	...	१०५
७९	क्रोध	...	...	१०७
८०	लोभ	...	...	११०
८१	मोह	...	...	१११
८२	अहंकार	...	...	११३
८३	चिंता	...	...	११४
८४	परस्पर प्रशंसा	...	...	११६
८५	रंडीबाजों का धर्म	...	...	११६
८६	झूठा कलंक	....	...	११७
८७	साकार निराकार	...	...	११७
८८	ठोकर खाने पर जन्म	...	...	११८
८९	हिन्दू	...	....	११९

ॐ ओ३म् ॐ

दृष्टान्त-सागर

चौथा भाग

१—ईश्वर कैसे प्राप्त हो.

किसी एक स्थान से ईश्वरनाथ, द्विजेन्द्र शर्मा, वीरसिंह, धनपतिराय और सेवकराम सबों ने मिलकर जगतपुर के मेले की तय्यारी की। जगतपुर का मेला कोई साधारण मेला नहीं लगता; किन्तु इसके सदृश दूसरा मेला भी नहीं। यहाँ तक यह प्रसिद्ध और अनुपमेय है कि इसके लिये दूसरी उपमा ही नहीं। इस मेले में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो न आती हो और कोई ऐसा दूकानदार नहीं कि जो न आता हो। बड़े-बड़े त्यागी महात्मा साधू लोग भी आते हैं; जिनकी जकड़ी पृथक् हो लगा करती है। इस मेले के मार्ग इतने कठिन हैं कि बड़े-बड़े जानकार भी प्रायः मार्ग भूल जाया करते हैं; फिर न जाननेवालों की तो बात ही क्या है। अतः, मेले के चलते ही उक्त पाँचों में से ईश्वरनाथ, जो शेष चारों का बड़ा ही मित्र था यहाँ तक कि उन चारों ही का प्राण था, मेले के चलते ही छूट गया और ईश्वरनाथ की ओर इन चारों का कुछ ध्यान ही न रहा। यह ऐसे सड़के कि चारों अपनी धुन में मस्त चले आये। मार्ग के श्रम से यह भूख-प्यास में इतने व्याकुल थे कि मेले में पहुँच करके भी प्रथम भोजन और जल की चिन्ता करने लगे। वहाँ

एक ऊँची दूकान पर जा, जिस पर कि एक स्त्री बैठी थी, चारों ने दुग्ध मोल लेकर पान किया; पुनः पान-पत्ता खाकर मेले की विचित्रता देख वह ऐसे फँसे कि बहुत समय तक ईश्वरनाथ का स्मरण न आया। कुछ ही समय के बाद जब फिर विशेष क्षुधा ने सताया, तो सारा द्रव्य तो ईश्वरनाथ ही के पास था; अतः यह चारों ईश्वरनाथ की खोज करने लगे। ईश्वरनाथ भी परम योगी थे; इस कारण मेले में भी इनके साथ ही साथ रहे; पर वह इतने तमाशबीन थे कि सारा मेला खोजने पर और ईश्वरनाथ के साथ होने पर भी उन्होंने ईश्वरनाथ को न पाया; क्योंकि उनका ध्यान तो मेले के चटकीले-चमकीले पदार्थों की ओर तथा अन्य कौतुकों की ओर चला जाता था। परिणाम यह हुआ कि यह चारों मेले में बहुत भटके; पर ईश्वरनाथ को न पाया। अतः यह हैरान होकर मेले से निकल एक मकान की एक कोठरी के द्वार पर लेट गये। ईश्वरनाथ पहिले से ही उस कोठरी में उपस्थित था; पुनः उन चारों पुरुषों की एक पहुँचे हुए महात्मा से भेंट हुई। उनसे वार्ता होने पर यह ज्ञात हुआ कि ईश्वरनाथ इस कोठरी के भीतर है। यदि यह किसी प्रकार खुल जाय, तो ईश्वरनाथ मिल जायँ। पुनः चारों ने कुल्हाड़ा ले उन वज्रवत् कपाटों को चीड़ा। कपाटों के अलग होते ही उनको अपने परम मित्र का दर्शन हुआ। सज्जनो! दृष्टान्त तो यह हुआ; पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि सम्पूर्ण प्रकृति और सुषुप्ति अवस्था में जीवों के स्थित होते हुए जब ईश्वरनाथ ने मेले का इस कथन के अनुसार कि—

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायायेय.

विचार किया, तब तत्काल ही यह संसार रूप मेला लग गया। इसकी उपमा तथा महानता तो अकथनीय है ही; परन्तु

बहुत से स्त्री-पुरुष मेला देखने चले और उनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और सेवा यह चारों शक्तियाँ विद्यमान थीं। उन्होंने मार्गश्रम जो उठाया, वह गर्भधारणादि का क्लेश है, जिससे बढ़कर दूसरा क्लेश नहीं हो सकता, पुनः मेले में पहुँच मायारूपी स्त्री से कर्मरूप पूँजी द्वारा दुग्ध खरीदकर प्रथम दुग्ध पान किया; पर मित्र ईश्वरनाथ यानी प्रभू का तो स्मरण इस कथन के अनुसार कि—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

प्रकृति में फँसकर लोग उस ईश्वर को नहीं जानते और न विना उसकी कृपा के ही इस प्रकृति से तर सकते हैं; पुनः अन्न-प्राशन के पश्चात् कुछ और बड़े होने पर जब अन्न और वस्त्र की आवश्यकता हुई, तब हम जीव उस ईश्वर को याद करते हैं और मेले यानी संसार भर में कहीं पूर्व, कहीं पश्चिम, कहीं उत्तर, कहीं दक्षिण उसके ढूँढ़ने के लिये बड़े-बड़े स्थानों में मारे-मारे फिरते हैं। उस समय यदि किसी ऋषी सरीखे महात्मा से भेंट हो जाती है, तो वह बतला देता है कि—

पातालं न च विवरं गिरीणाम्;
नैवान्धकारं कुक्षयो नेदधीनाम्।
गुहायस्यां निहतं ब्रह्म शाश्वतं,
तं भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

अर्थ—वह प्रभू न पाताल में है, न पहाड़ों की गुफा में है,

न अन्धकार में ; न समुद्र की सतह में ; बल्कि वह तो हृदयरूप गुहा में जीवात्मा के अन्दर है ; यथा—

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्व भूतादि वासा साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

तथा

य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनो अन्तरो ।
यमात्मा नवेद यस्यात्मा शरीरम् ॥

तथा

अन्तरः भूत् ग्रासवत्.

अतः, उस परमात्मा को ऐसी जगह ढूँढ़ो, जहाँ प्रकृति के झंझट न हों। बस यह नियम समझो कि स्थूल के अन्दर सूक्ष्म प्रवेश कर सकता है ; पर सूक्ष्म के अन्दर स्थूल नहीं ; अतः प्रकृति सबसे स्थूल है ; उससे सूक्ष्म जीवात्मा और उससे सूक्ष्म परमात्मा है। इस कारण जीवात्मा तो प्रकृति में प्रवेश कर सकता है ; पर जीवात्मा के अन्दर प्रकृति प्रवेश नहीं कर सकती है। बस वहाँ तो केवल एक शुद्ध ब्रह्म हो स्थित है, सो भी इस कथन के अनुसार कि—

दिल के आयने में है तसवीर यार की।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

२—आत्म-बोध.

किसी महात्मा से एक जिज्ञासु ने कहा कि हमको किसी ऐसे प्रत्यक्ष दृष्टान्त के द्वारा आत्मा का बोध करा दीजिये कि जिससे फिर कोई सन्देह ही शेष न रह जाय। तब उन महात्मा

ने जिज्ञासु से कहा कि अच्छा, प्रथम तुम एक मिट्टी की बड़ी हाँडी ले आओ। जब वह मिट्टी की हाँडी ले आया, तब महात्मा ने कहा कि अब इसमें चारों ओर बड़े-बड़े छिद्र थोड़ी-थोड़ी दूर पर करो। जिज्ञासु जब छिद्र कर चुका तब उससे कहा कि अब एक सरावा इस पर ढकने के लिये ले आओ। जब वह सरावा ले आया, तब फिर कहा कि अब एक दीपक जलाकर इसके नीचे रखने को ले आइये। जिज्ञासु वह भी ले आया। पुनः महात्मा ने कहा कि बीड़ा, पुष्प, सुवर्ण, हलुवा, पूड़ी और कस्तूरी यह पाँच वस्तुएँ भी थोड़ी-थोड़ी ले आओ। जब जिज्ञासु वह भी ले आया तब कहा कि अब यह सब चीजें किसी ऐसे घोर अन्धकार में ले चलो, जहाँ कि अपना हाथ भी न दिखलाई पड़ता हो। जब जिज्ञासु सम्पूर्ण पदार्थ अन्धकार में ले गया, तब महात्मा ने सबसे नीचे भूमि पर तो दीपक जलाकर रक्खा; पुनः उसके ऊपर हाँडी लौटकर रख दी; पुनः उस हाँडी के एक-एक छिद्र के पास उक्त पाँचों वस्तुएँ रख दीं और फिर जिज्ञासु से पूछा कि कहो, अब तुमको इसमें क्या-क्या दिखाई पड़ता है। तब जिज्ञासु ने कहा कि मुझे बीड़ा, पुष्प, सुवर्ण, हलुआ, पूड़ी, कस्तूरी यह पाँचों पदार्थ दिखलाई पड़ते हैं और हाँडी तथा उसमें पाँच छिद्र और उसके भीतर एक जलता हुआ दीपक दिखलाई पड़ता है। तब महात्मा ने पूछा कि यह बीड़ा आदिक जो तुमको दिखलाई पड़ रहे हैं, वह स्वयं प्रकाशित हैं वा किसी दूसरे प्रकाश से दिखलाई पड़ते हैं। तब जिज्ञासु ने कहा कि महाराज यह पाँचों तो हाँडी के प्रकाश से प्रकाशित हैं; पुनः महात्मा ने कहा कि वह हाँडी स्वयं प्रकाशित है वा किसी अन्य प्रकाश से प्रकाशित हो रही है, तब जिज्ञासु ने कहा कि महाराज वह दीपक के प्रकाश से प्रकाशित हो रही है। महात्मा ने

फिर पूछा कि दीपक एक वस्तु नहीं है; उसमें एक सरावा, दूसरा तेल, तीसरी वत्ती, चौथी टालने की लकड़ी और पाँचवें ज्योति है। इन सबमें किसके प्रकाश से यह प्रकाशित है। तब जिज्ञासु ने उत्तर दिया कि महाराज! यह सब एक ज्योति के प्रकाश से प्रकाशित हैं। तब महात्मा ने कहा कि यह ज्योति क्या स्वयं या किसी के करने से प्रकाशित हुई है। तब जिज्ञासु ने उत्तर दिया कि महाराज! यह ज्योति अग्नि से हुई है, सो अग्नि और सूर्य में प्रकाश का गुण तो है, पर यह आपके प्रकाशित करने से तेल और वत्ती दीपकरूप साधन से प्रकाशित हुई है। वस इतना कह महात्मा ने जिज्ञासु से कहा कि क्यों भाई जिज्ञासु! तू अपने प्रश्न का उत्तर समझ गया। तब जिज्ञासु ने कहा कि महात्मा! मैं अभी कुछ भी नहीं समझा। तब महात्मा ने दृष्टान्त को दार्ष्टान्तरूप में वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। देख जिज्ञासु! यह शरीर तो हाँडी है; पञ्च छिद्र पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; तेल, वत्ती, सरावा और लकड़ी-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह चारों मिलकर अन्तःकरण चतुष्टय हैं; ज्योति जीव तथा वीड़ादि के पञ्च विषय हैं; सो यह विषय और शरीर तथा इन्द्रियाँ और अन्तःकरण सब जीव से प्रकाशित हो रहे हैं और यह जीव भी यद्यपि नित्य और ज्ञानवाला है; पर उस परम ज्योति की ही रचना से यानी जब परमात्मा प्रकृति साधन को लेकर जीवों के शरीर रचकर उन शरीरों में इनका प्रवेश कराते हैं, तभी वह जाने जाते हैं। कहा भी है कि—

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकन्नमे,
विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भ्रान्त मनु भाति सर्वन्तस्य,
भाषा सर्वमिदं विभातिः॥

३—अध्यात्म विद्या.

एक राजा के महल में रात्रि के समय दरबार लगा हुआ है; दीवान, सरदार, सेक्रेटरी और बड़े-बड़े अहलकार बैठे हुए हैं; बड़े शान का दीपक जल रहा है; और एक नटी (नाचनेवाली वेश्या) नृत्य गायन कर रही है; उसके साजिन्दे सारंगी, तबला, सितार आदि बाजे बजाने में कमाल कर रहे हैं। नटिनी के स्वर के साथ सरंगी और सितार के स्वर इस प्रकार मिलकर चलते हैं कि मानो तीनों एक रूप हो गये हैं। तबला बजानेवाला भी ऐसी सफ़ाई से बजा रहा है कि जहाँ सम आई कि झट उसने ताल दे दिया। इधर तबले की सम मिली उधर सरंगी और सितार के स्वर मिल गये। बस राजा और दीवान सब आनन्द में मग्न होकर बोल उठे—वाह-वाह! वाह-वाह!! सुब्हान अल्लाह! बल्ले अल्लाह!! गाने का आनन्द मिला, सुख हो गया। अब थोड़ी देर के लिये मान लो कि नटी पञ्चम में गा रही है; सारंगी ऋषभ में बज रही है; सितार गान्धार में बजता है और ताल का मेल नहीं। परिणाम क्या हुआ कि राजा की तबीयत बिगड़ी और उसने कह दिया कि क्या वाहियात गाना हो रहा है; हमारी तबीयत बिगड़ती है; इसे यहाँ से दूर करो। बस राजा को दुःख हो गया। साज का मिलना ही सुख है और उसका न मिलना ही दुःख है। यह तो ठीक है; परन्तु यह सब चरित्र कब तक है, जब तक दीपक जल रहा है तब ही तक; ज्यों ही गुल हुआ और प्रकाश जाता रहा; त्यों ही न नटिनी का गाना रहेगा, न सरंगी, न सितार का बजना रहेगा और न उससे होनेवाला सुख-दुःख ही राजा को रहेगा। तात्पर्य्य यह निकला कि राजा के सुख-दुःख भोगनेवाला और साक्षी वही एक प्रकाश है; परन्तु

वह प्रकाश और प्रकाशवाला स्वयं बिल्कुल असंग है। न उसे राजा के सुख से प्रयोजन है और न दुःख से ग़रज़। एक राजा के स्थान में दूसरा राजा आ जाय, तो भी प्रकाश को कोई परवाह नहीं। अब इसका दार्ष्टान्त यह है कि यह शरीर ही महल है; इसमें जीवात्मारूप राजा बैठा हुआ है; संसारी बुद्धि नाचनेवाली वेश्या है; पाँच कर्म इन्द्रियाँ और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ इसके साज़िन्दे हैं। मन, चित्त और अहंकार यही इसके दीवान वग़ैरा हैं। यदि बुद्धिरूप नटिनी और साज़िन्दे का मेल हो गया तो सुख, और बेमेल हो गया तो दुःख। शास्त्रानुकूल इन्द्रियों का साज़ बाजा और बुद्धि वेश्या ने नृत्य किया, तो सुख और उसके विरुद्ध अपने इच्छानुसार साज़ बजाने व नृत्य करने से दुःख होता है। अपनी धर्मपत्नी में सन्तानोत्पादन करने से नटिनी साज़िन्दों का मेल मिलकर सुख होता है और पर स्त्री की इच्छा रखने में बेमेल काम होता है और उससे दुख होता है। यह राजा, वेश्या और साज़िन्दे इन सबों का प्रकाशक परमात्मा है; परन्तु वह दीपक की भाँति तीनों काल में असंग है। उसे किसी के सुख-दुःख से ग़रज़ नहीं। इस राजा और परमात्मा में इतना अन्तर है कि राजा सत-चित है और परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। यह परमात्मा का प्रकाश हमारे अन्तःकरणों में चित्रगुप्त की भाँति विराजमान है। बस जो कुछ भले-बुरे कर्म जीव ने किये कि चित्रगुप्त ने त्यों ही नोट किये।

४–प्रकृति.

एक स्त्री उत्पन्न होने से प्रथम द्रवरूप वीर्य और रज में अपने माता-पिता में विभक्त रूप से स्थित थी; पुनः

जिस दिन से वह गर्भ में आई, नौ मास गर्भ में रह अपने नियम के अनुसार उसकी वहीं रचना होती रही। जब वह उत्पन्न हुई, तब इस कहावत के अनुसार कि कलावती नित्यप्रति चारु चन्द्रकला के समान बढ़ती हुई थोड़े ही काल में युवावस्था को प्राप्त हो गई और यहाँ तक यह विज्ञ हुई कि इसने अपने सौन्दर्य तथा चातुर्यता वा अन्य अपने उत्तम-उत्तम गुणों से अपने कार्यरूप में परिणत करनेवाले को इस भूतल ही में नहीं; किन्तु लोक-लोकान्तर में प्रसिद्ध कर दिया। पुनः उस परिणत करनेवाले ने इसको पुरुष-शक्ति के साथ योग कर इसके अनेकों सन्तान उत्पन्न किये। यह माता अपने सन्तानों को अनेक प्रकार के भोग उत्पन्न कर उनको भुगाती और अपने परिछिन्न रूप व्यापकता से शतशः रूप धारण कर; यथा—कहीं तो यह अन्नपूर्णा का रूप धारण करती; कहीं सरस्वती का रूप धारण करती; कहीं लक्ष्मी का रूप धारण करती; कहीं दुर्गा का रूप धारण करती है; इसी भाँति कहीं दया, कहीं क्षमा, कहीं शान्ति, कहीं भुक्ति, कहीं मुक्ति, कहीं मोहिनी, कहीं खड्गरूप धारण करती और भयङ्करी आदि अनेकों रूपों से यह अपनी महानता से संसार को चकित कर रही है। इसने अपने गुणों की महानता से अपने परिणतकर्त्ता स्वामी तथा अपने पुत्रों से इस प्रकार घनिष्ट सम्बन्ध कर रक्खा है कि इसके बिना न तो वे ही दोनों कुछ कर सकते और न उन दोनों के बिना यही कुछ कर सकती है। इसका यह भी एक स्वभाव विलक्षण है कि जो इसका पुत्र इसके परिणतकर्त्ता से मिल इसके स्वभाव को जान इससे बर्त्तता है उसके लिये तो यह सुखकारिणी हो उसके सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करती है और जो पुत्र परिणतकर्त्ता के द्वारा इसके स्वभावों को न जान अपने आप इससे बर्ताव करता है, उसे तो यह ऐसे चक्कर

बतलाती है कि वह इसके गोरख-धन्धे से कभी छूट नहीं सकता; बल्कि इस दशा के अनुसार कि—

का छूट्या यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहै, त्यों-त्यों उरझत जात॥

सज्जनों! दृष्टान्त तो यह हुआ, पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि यह प्रकृति विकृत रूप में आने के पहिले कोई तो कहता है कि यह परमाणु रूप में स्थित थी, कोई कहता है कि यह कोहरे के रूप में स्थित थी, कोई कहता है कि यह वायु के रूप में थी; पर मेरा विचार है कि यह आकाश के सदृश रूप में ही स्थित थी; पुनः जब परमात्मा ने विचार किया कि मैं सृष्टि-रचना करूँ, तब यह अण्डे रूप गर्भ में आई और वह गर्भ इसी हिसाब से कि जैसे १०० वर्ष की आयुवाला नौ मास गर्भ में रहता है, इसी भाँति यह चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की आयुवाली प्रकृति इस प्रमाण के अनुसार कि—

तस्मिन्नण्डे सभगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयं मेवात्मनो ध्यानात्तदण्डम करोद्द्विधा॥

वह एक चिरवत्सर अर्थात् ब्रह्मा के सौ वर्षों में एक वर्ष गर्भ में रह नाना रूपों में उत्पन्न हुई; पुनः चन्द्रकला की भाँति युवावस्था को प्राप्त हुई फिर उस परमात्मा ने इस प्रकृति से ही रवि और प्राण दो शक्तियों को उत्पन्न कर—

उष्मजाऽण्डज जरायुजोद्भिज साकल्पिक-
सांसिद्धिक चेति न नियमः।

उष्मज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज, सांकल्पिक, सांसिद्धिक, छै प्रकार से सृष्टि उत्पन्न की। तब इस पूज्य प्रकृति देवी ने ही

अपने सौन्दर्य, अपने गुणों और अपने अनेक रूपों से देवदूती बन प्रभू की महिमा लोक-लोकान्तरों में विस्तृत की और यह प्रकृति ही है जो परिछिन्न रूप व्यापक हो नाना प्रकार के शरीर उत्पन्न कर हम जीवों की माता का पद प्राप्त किया। वह अनेक भोग रूप हो हमको भोग भुगाती है, यथा—गेहूँ, जौ आदि अन्न रूप हो हम जीवों का जीवन बन रही है और विद्या रूप हो हमको अपने असंख्य रूप धारणाकर उन सर्व रूपों का ज्ञान करा परम पिता परमात्मा तक पहुँचाती है ; जैसे—कवि ने कहा है कि—

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे ज्योतिः सुबन्धो जल।
भ्रात व्योम निवद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः॥
युष्मत्सङ्ग वशाप जात सुकृतोद्र कः स्फुरन्निर्मल।
ज्ञानापास्त समस्त मोह महिमा लाये परे ब्रह्मणि॥

अर्थ—ऐ मात पृथिवी, पिता वायु, मित्र अग्नि, कुटुम्बी जल, भाई आकाश ! हमने आप लोगों का साथकर अनेकों भोग भागे ; अनेकों सुकृत किये ; पर अब हाथ जोड़ तुम सबसे यह प्रार्थना है कि ऐ साथियो ! तुम सब ब्रह्म तक पहुँचाकर ही लौटना ; कहीं बीच में न लौट पड़ना।

बस इसी भाँति यह देवी ही ब्रह्म तक पहुँचाने वाली है ; लक्ष्मीरूप हो यही हमारे भण्डार और खज़ाने भरे हुए हैं ; अपने इस एक रूप से सम्पूर्ण रूपों के दर्शन करा देती है ; दुर्गा रूप हो दुर्गती को नाश कर रही है ; कभी मोहनी रूप हो अपने ही चक्कर में डाल रखती है ; कभी दया, क्षमा, शान्ति रूप हो हमसे नाना प्रकार के उपकार कराती है, और कभी खड्गरूप हो युद्ध में दुष्टों का दमन भी भली-भाँति करती है। सज्जनो !

दुर्गा की पोथी अगर कुछ है, तो उसमें प्रकृति को ही दुर्गा मानकर प्रकृति-महिमा दर्शाई है। अब आप दुर्गा की पोथी हाथ में लो और उसमें प्रकृति-वर्णन और उस की प्रशंसा का भाव मानकर पढ़िये और देखिये, आपको कितना आनन्द आता है। जसे उक्त सर्ग के विना उसके पुत्र परिणत कर्ता स्वामी कुछ नहीं कर सकता, सो प्रकृति के विना न परमात्मा ही कुछ कर सकते हैं, न यह जीव ही कुछ कर सकता है; क्योंकि जब तक कोई वस्तु न हो, तो क्या उठाया जाय, क्या गिराया जाय, क्या समेटा जाय, क्या फैलाया जाय और क्या लेकर गमन किया जाय? पाँचों ही प्रकार के कर्म वस्तुएँ आकाश के आश्रय हैं; क्योंकि विना आकाश के भी कर्म नहीं हो सकता; अतः प्रकृति तो जड़ होने से अपने आप कुछ नहीं कर सकती और यह जीव तथा ईश्वर दोनों चैतन्य होते हुए विना उपादान के कुछ नहीं कर सकते और रही सुख-दुःख की व्यवस्था सो—

न प्रकृति निबन्धनाच्चेनतस्या अपि पारतनाथम्।

अर्थ—प्रकृति परतन्त्र होने से किसी के बन्धन का कारण नहीं हो सकती।' अतः यह नियम है कि ज्यों-ज्यों पुरुष परमात्मा के समीप जाने का यत्न करता है, त्यों-त्यों ज्ञानी और सुखी; और ज्यों-ज्यों प्रकृति की ओर जाता है, त्यों-त्यों अज्ञानी, और उसी अज्ञान से दुखी होता है; पर जो पुरुष प्रभू की शरण ले प्रकृति का अन्वेषण करता है, उसके लिये यह देवी अपना सम्पूर्ण ज्ञान करा प्रभू से अवश्य मिला देती है। अतः इस प्रकृति देवी का बल भी कोई साधारण बल नहीं; बल्कि एक महान् बल है। इसके पंजे में आज तक केवल एक परमात्मा के जितने उत्पन्न हुए सभी आये और सभी को इसने धर दबाया; बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि इसने परमात्मा को भी इस

विषय में कि इसके विना वह कुछ नहीं कर सकते अपना आश्रित सा बना रक्खा है। इससे मेरा तात्पर्य्य यह कदापि नहीं कि परमात्मा प्रकृति के आश्रय है।

५—विद्या.

एक राजा के एक रानी, एक राजकुमार तथा एक कुमारी थी। कुमार हर प्रकार से योग्य थे और उनकी अवस्था बीस-बाइस वर्ष की हो गई थी। कुमार की यह इच्छा थी कि पिताजी अब मुझे युवराज पद दे दें; पर पिताजी का विचार यह था कि अभी कुछ और विद्याध्ययन कर ले और राज-काज तो मैं अभी करता ही हूं, इसलिये कुछ दिन बाद गद्दी दूँगा; परन्तु कुमार गद्दी के न मिलने से व्याकुल था। यहाँ तक कि कुमार ने अपने मन में यह निश्चय किया कि मैं कल राजा का शिर उड़ा दूँगा। इसी भाँति राजकुमारी भी जो कि अत्यन्त रूपवती, महान् विदुषी और षोड़श वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी; पर राजा साहब पुत्री के योग्य वर न मिलने के कारण विवश हो रहे थे और पुत्री विवाह के लिये अधीर हो रही थी; अतः उसने भी निश्चय कर लिया था कि कल को अमुक पुरुष के साथ मुझे भग जाना है। उधर राजकुमार का यह विचार कि कल मैं पिता का शिर धड़ से जुदा कर दूँगा, इधर पुत्री का यह विचार कि कल मुझे अमुक पुरुष के साथ निकल जाना है कि उसी रात को राजा की राज-सभा में एक नटी नाच रही थी और वहाँ पर राजा, रानी, कुमार और कुमारी चारों ही बैठे हुए थे। नटी को सारी रात नाचते हो गया; पर उसे एक कौड़ी भी न मिली। तब नटी ने व्याकुल हो अपने चित्त को समझाने के अर्थ एक श्लोक पढ़ा—

गतं बहुतरं कालं स्वल्पमेवावशेषितं।
कुरु चित्त समाधानं मा भवेद्कुल दूषणम् ॥

अर्थ—बहुत सा काल बीत गया, अब थोड़ी रात शेष है, सो तू अपने मन में धीरज रख, नहीं तो तेरे कुल में कलंक लग जायगा।

इसको सुनकर राजकुमार ने समझा कि यह नटी मेरे मन के भावों को जान गई है; इसलिये यह मेरे समझाने के ही अर्थ ऐसा कहती है और इसी भाँति राजकुमारी ने भी समझा; अतः उन दोनों ने एक-एक बहुमूल्य हार नटी को दे दिया। यह दशा देख राजा ने उन कुमार और कुमारी को पास बुलाकर पूछा कि तुम दोनों ने ऐसा क्यों किया? उन दोनों ने अपने अपराध की क्षमा प्रथम से ही माँग राजा से सब सच्चा-सच्चा हाल कह दिया और उन घृणित कर्मों से दोनों ने अपना-अपना चित्त हटा लिया। राजा भी यह जान बड़ा प्रसन्न हुआ। अब सोचिये कि यदि उन दोनों में विद्या न होती, तो उस उपदेश को कैसे ग्रहण करते और कैसे उस महान् अत्याचार रूप कर्म से बचते; अतः मनुष्य को विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये।

६—बिना बिचारे कार्य न करना चाहिए।

एक वैद्यजी बहुत बड़े चिकित्सक थे, यहाँ तक कि चारों ओर उनकी कीर्त्ति विस्तृत हो रही थी और उनकी आमदनी भी इतनी बढ़ी हुई थी कि सैकड़ों रुपया रोज आता था; पर कालवशात् वैद्यजी की मृत्यु हो गई कि जिससे उनकी सम्पूर्ण आमदनी का सिलसिला बन्द हो गया; इस कारण वैद्यजी का पुत्र जो एक मूर्ख था महान् दुख

हुआ ; यहाँ तक कि कुछ ही काल में उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति नष्ट हो गई और उसे रोटियों के भी लाले पड़ गये। एक दिन वह वैद्यजी के पुत्र बैठे हुये थे कि इतने में एक श्लोक उसके हाथ पड़ा, वह यह कि—

यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनाऽपि पेष्टितं।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वातद्वा भविष्यति ॥

अर्थ—जिस-तिस वृक्ष की मूल हो, येन-केन प्रकार से पीस-कर किसी न किसी के माथ दे दो, तो कुछ न कुछ हो ही मरेगा।

बस इसे पाते ही वे वैद्यजी के पुत्र पूर्ण वैद्य बन गये। यह श्लोक क्या उनके लिये तो पारस मणि कि बटिया मिल गई। अब वह वैद्य-पुत्र महाराज प्रातःकाल से ही ओषधि करने लगे। उसका परिणाम जो कुछ होना था वही हुआ। इसी प्रकार हमारे बहुत से भाई बिना सोचे-समझे कार्य कर डालते हैं और वह परिणाम की ओर ध्यान नहीं देते; इसलिये प्रत्येक पुरुष को उचित है कि—

अपरीक्षिता न कर्तव्या कर्तव्या सुपरीक्षितम्।
पश्चात् भवति संतापो ब्राह्मणं न कुलार्थतः ॥

७—वंचक.

एक महाशय जिनका नाम तुम्बकतूरा था, कहीं जा रहे थे। मार्ग मे एक ग्राम से होकर निकले कि इतने में अनायास ही रोने की आवाज़ आई। तब तुम्बकतूराजी ने पूछा कि भाई इधर कौन रो रहा है? तब लोगों ने उत्तर दिया कि अमरा एक ब्राह्मण था मर गया। खैर! तुम्बकतूराजी आगे बढ़े कि एक

शख्स बेतहाशा बड़े जोर भागा जा रहा था और एक पीछे उसके पीछा किये हुए आ रहा था। तब इन्होंने आगेवाले से पूछा कि भाई साहब आप कौन हैं; आपका क्या नाम है; आप इतने वेग से क्यों भागे जा रहे हैं? तब इन्होंने भी जल्दी ही से उत्तर दिया कि हमारा नाम शूरा और हम क्षत्री हैं। पुनः जब तुम्बकतूरा जी कुछ और आगे चले, तो क्या देखते हैं कि एक बुढ़िया कि जिसका नाम लक्ष्मी था उपले अर्थात् कण्डे बीन रही थी। उससे इन्होंने पूछा कि बुढ़िया तू कौन है और तेरा नाम क्या है? तब उसने उत्तर दिया कि मैं सेठानी हूं और मेरा नाम लक्ष्मी है। पुनः तुम्बकतूराजी कुछ ही आगे और बढ़े कि इनसे भी एक शख्स ने प्रश्न किया कि आपका नाम क्या है। तब इन्होंने उत्तर दिया कि मेरा नाम तुम्बकतूरा है। यह सुन लोगों ने इनका बड़ा ही उपहास किया। कहा—वाह! क्या कहना है। देखिये आपका नाम तुम्बकतूरा है। भला! तुम्बकतूरा भी कोई नाम है। भला इसके क्या माने हुए? कैसा अनर्थक नाम है, तब तुम्बकतूरा जी बोले कि—

अमरा तो हम मरते देखा, भगते देखा शूरा।
कण्डा बिनते लक्ष्मी देखी, खासा तुम्बकतूरा॥

इसी प्रकार आजकल लोग कौड़ी तो एक पास नहीं, पर नाम लखपतिया; भुइँ बिस्वा भर नहीं, नाम पृथ्वीपति; अक्षर एक नहीं, नाम शास्त्रीजी; तप का कहीं नाम-निशान नहीं, नाम तपस्वीजी! ठीक है कि—

निस्सारस्य पदार्थस्य प्रायः आडम्बरो महान्।
न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यद् कांस्ये प्रजायते॥

८—खुदा बड़ा ही बेवकूफ़ है

एक मियाँ साहब कहीं जा रहे थे कि रास्ते में आपके पैर में एक काँटा लग गया। मियाँ पैर पकड़कर सिसकारियाँ भरने लगे और बोले कि खुदा बड़ा ही बेवकूफ़ है। भला बतलाइये कि काँटे बनाने के बग़ैर उसका क्या मारा जाता था। यह कहकर काँखते-कूँखते और लुरखुराते हुए कुछ आगे बढ़े। दोपहर हो गई थी, जेठ मास की धूप थी; जिससे आप व्याकुल हो रहे थे; इतने में आपको एक ऐसा खेत मिला कि जिसमें कद्दू बोये हुए थे और पेड़ों में बहुत बड़े-बड़े कद्दू भी लगे हुए थे। उस खेत की मेड़ पर कई आम के दरख़्त लगे हुए थे; जिनकी सघन छाया अत्यन्त ही सुखदाई थी। उन्हीं आमों की पाँत के पास एक पक्का बँधा हुआ बड़ा खूबसूरत कुआँ भी था। ऐसा स्थान देख मियाँजी वहीं उतर पड़े। आपने खेत की तरफ़ देखा, तो कद्दुओं की बेल तो ज़मीन में फैली हुई थी; मगर फल बहुत बड़े-बड़े लगे हुए थे। इसके बाद हो आपने आम के दरख़्तों की ओर नज़र डाली। वह वृक्ष बड़े तो बहुत थे; पर फल बहुत छोटे-छोटे लगे हुए थे। यह देखकर फिर आप ने कहा कि खुदा ज़रूर ही बहुत बड़ा बेवकूफ़ है। देखो तो, जो दरख़्त ज़मीन में फैल रहे हैं, उनमें तो इतने बड़े-बड़े फल और जो आम के दरख़्त इतने बड़े-बड़े हैं, उनमें छोटे-छोटे फल। यह कहकर आप चुप हुए थे कि एक बैल उस खेत में आने की चेष्टा कर रहा था; मगर उसमें झाखड़ों की बेड़वाही लगी होने के कारण वह नहीं आ सका। यह देख मियाँजी बोले कि खुदा ज़रूर आक़िल है; क्योंकि अगर इस खेत में इन काँटों की बेड़वाही आज न लगी होती, तो यह बैल किसान के खेत

को खा जाता। इसके बाद आप खाना खाकर दोपहर को उन आमों के नीचे आराम करने लगे कि इतने में ऊपर से आम का एक फल टूटकर इनकी नाक पर आ गिरा; तब तो आप सोच-कर बोले कि मेरी भूल है कि जो मैंने ऐसा कहा। खुदा निश्चय ही बड़ा अक़िल है; क्योंकि अगर आज इस दरख्त में कहीं वह फल लगे होते, तो हमारी तो राम-राम सत्य ही थी। ठीक है कि—

यः सुन्दरस्तद् वनिता कुरूपा या सुन्दरी सा पतिरूपहीना।
यत्रोद्भयं तत्र दरिद्रता च विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि॥

६–शुतुर बेमोहार.

एक पथिक को बहुत बड़ी दूर का मार्ग तै करना था। अतः उसने विचार किया कि पैदल तो काहे को वर्षों में हम इस सफ़र को तै कर सकेंगे; इसलिये अगर कोई तेज़ सवारी होती, तो अच्छा था; उससे शायद हम आज ही अपने नियत स्थान को, जा कि यहाँ से ६० कोस की दूरी पर है, पहुँच जाते। उसने यह भी सोचा कि घोड़ा, एक्का और बग्घी कोई भी सवारी हमें इतनी दूर नहीं पहुँचा सकती, बैलों का भी इतनी दूर पहुँचना असम्भव ही है; इसलिये कुछ ऊँट, जो वहीं चुग रहे थे, देख आपने सोचा कि यद्यपि काठी और मोहार वगैरह यहाँ कुछ नहीं हैं, तो भी क्या हुआ; यह ऊँट हमें आज ही वहाँ अवश्य पहुँचा देगा। यह विचार हज़रत मुसाफ़िर बिला कुछ सोचे-विचारे उस बेमोहार शुतुर पर सवार हो गये। वह ऊँट बड़ा ही शातिर और बदमाश था; यहाँ तक कि ज्यों ही मुसा-फ़िर पीठ पर गया कि शुतुर लेकर चम्पत हुआ। अब तो

मुसाफिर साहब की आँखें बन्द थीं और होश-हवाश ग़ायब थे। लोगों ने इनसे पूछा कि ओ भाई ऊँट के सवार! तुम कहाँ जाओगे? तब इस मुसाफिर ने उत्तर दिया कि भय्या! कहाँ बतावें; मेरे बस को सवारी होती, तो मैं कहता कि वहाँ जाऊँगा; पर अब तो—

शुतुर बेमोहार है, मंज़िले दुश्वार है,

इसलिये अब जहाँ यह शुतुर ले जाय, वहीं हमारा मंजिले मक़सूद है। इतना कहना था कि ऊँट कोसों की दूरी पर पहुँचा; कभी तो दरख़्तों के नीचे से निकलता, कभी काँटों से और कभी गड्ढों में जा गिरता। इस भाँति शुतुर ने मुसाफिर को समाप्त कर दिया। इसलिये सज्जनों को अगर वह अपने मंजिले मक़सूद पर पहुँचना चाहते हैं उचित है कि वह बिना मोहार लगाये शुतुर पर कभी सवारी न करें। महाशयो! दृष्टान्त तो यह हुआ; पर दार्ष्टान्त इसका यह है कि

आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रिय अर्थेन

मुसाफिर जीवात्मा अर्थ और इन्द्रिय आदि सब सवारियों को देखे बिना ज्ञानांकुश मन इस शुतुर बेमोहार पर चढ़, अपने जीवन को नष्ट कर देता है। इसलिये इसे यह जरूरत है कि—

मनो वशेन्येह्यभवं स्मदेवाः मनस्य नान्यस्य वशं समेति।
भीस्मांहि देवा सहसा सहीयान् युंज्यात् वशेदं सहि देव देवः॥

१०—पंचों की राय सिर पर, पर पनाला यहीं रहेगा.

एक जगह किन्हीं दो महाशयों के मकान पास ही पास थे; उनमें से एक भाई का पनाला दूसरे के बिलकुल घर में ही

गिरता था। उन दोनों महाशयों में इस बात पर बहुत कुछ झगड़ा हुआ। अन्त में फिर यह विचार हुआ कि आपस में पञ्चायत कर ली जाय और अदालत में जाना ठीक नहीं। इस भाँति दोनों की सम्मति से पाँच पञ्च नियत हुए और वह पञ्चायत करने के लिये आये। तब पञ्चों ने उस भाई से, जिसका पनाला दूसरे के घर में गिरता था, कहा कि चूँकि तुम्हारा पनाला उसके घर में गिरता है और इससे उसकी दीवार का गिर जाना बहुत ही सम्भव है; इसलिये तुम अपना पनाला दूसरी तरफ़ को फेर लो। देखो, जगह तो इधर भी पड़ी है; फिर आपको पनाला फेर लेने में क्यों उज्र है। तब उसने जवाब दिया कि पञ्चों की राय तो मेरे सिर पर है; पर पनाला वहीं रहेगा। सज्जनो! दृष्टान्त तो यह हुआ! पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि इसी भाँति बहुत से हमारे श्रोता भाई वक्ताओं के उपदेश सुन-सुनकर कहते हैं कि भाई कहता तो ठीक है; पर करते वही हैं कि जो पहिले से करते आये हैं; यानी पञ्चों की राय तो सर पर है; पर पनाला वहीं रहेगा। सज्जनो!

पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि नूनं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्षान्यतरद्भजन्ते,
मूढः परः प्रत्ययनेय बुद्धिः॥

अर्थ—न तो प्राचीन बातें ही सब अच्छी हैं और न नूतन ही सब निन्दनीय हैं; इसलिये सन्त विद्वान् जन उनकी परीक्षा कर अच्छी बातों को ग्रहण करते और बुरी बातों का त्याग करते हैं; पर मूढ़ तो लकीर के फ़क़ीर हो वही अपनी पुरानी लकीर पीटते हैं।

११—धन में सुख नहीं.

एक सेठजी के चित्त में यह बात समाई हुई थी कि संसार में धन से ही सुख होता है ; अतः आप जिस इष्टदेव के उपासक थे, उनसे यही वर माँगा कि हम जिसे छू लें, वह सोना हो जावे। इष्टदेव ने तथास्तु कह सेठ की इच्छा पूर्ण की। अब तो सेठजी जब अपने इष्टदेव के लिये बागीचे में पुष्प उतारने पहुँचे, तो जिस पुष्प को आप छूते थे, वही सुवर्ण का हो जाता था। इसमें सेठजी को कुछ दिक्कत अवश्य पड़ती थी और वह यह कि जो फूल सोने का होता था, वह कुछ कड़ा हो जाता था, उसका डंठल भी कुछ मजबूत हो जाता था और कुछ कठिनता से यानी बहुत कुछ मिरोड़ने-पिरोड़ने से टूटता था ; पर तो भी सेठजी यह देखकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे कि जो हम छूते हैं वह सोना हो जाता है। आखिर सेठजी जब अपने घर आये, तब आपका हाथ किसी दीवार में लग गया, इससे वह भी सुवर्ण की हो गई और जिस-जिस स्थान से आप गये, वह सब सुवर्ण-भूमि हो गई। अब तो सेठजी की प्रसन्नता का पारावार ही न रहा। अब तो जिस समय सेठजी ने नहाने को जल लिया वह भी मैं गिलास के सोना हो गया। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। पुनः कुछ समय के बाद सेठजी खाना खाने बैठे ; उसमें ज्यों ही सेठजी ने हाथ लगाया कि वह भोजन और जल सुवर्ण हो गया। यह देखकर सेठजी बड़े ही चिन्तित हुए ; पर क्या करते, विवश थे। इतने में कुछ ही काल के बाद सेठजी का पुत्र सेठजी के पास आया। तब सेठजी ने ज्ञानशून्य हो ज्यों ही प्रेम से पुत्र को लाड़-प्यार करने के लिये गोद में उठा लिया, त्यों ही वह बालक सुवर्ण का हो निश्चेष्ट हो गया। यह देख सेठजी रोने लगे ; उन्होंने बड़ा पश्चात्ताप

किया और तत्काल ही इष्टदेव के पास गये और कहा कि प्रभो ! वर जो आपने दिया था इससे तो मेरी बड़ी हानि हुई ; देखिये यह यह अनर्थ हुए। इष्टदेव ने कहा कि हम क्या करें ; आपने जब बड़ी प्रार्थनापूर्वक माँगा, तब हमने यह वर दिया था। सेवक ने कहा कि हे प्रभो ! यह वर तो मेरे लिये आपत्ति बन गया ; इस-लिये इसे वापस ले लीजिये। तब इष्टदेव ने उस वर को वापस ले लिया। बस सज्जनो ! समझ लो कि धन में सुख नहीं। सुख तो गुण है और वह आत्मा द्रव्य के साथ रहता है। यह किसी वस्तु में कैसे मिल सकता है।

१२-आयु को वृथा मत खोओ.

एक बार हज़रत इन्सान, एक बैल, एक कुत्ता, एक बगुला और एक ऊँट पाँचों के पाँचों ही एकत्र हुए। सबों में परस्पर वार्त्तालाप होने लगी कि कहो भाई ! तुम्हारी उम्र कितनी और तुम्हारी उम्र कितनी है। इस प्रकार वार्ता प्रारम्भ होने पर इन्सान ने कहा कि हमारी बीस वर्ष और शेष सबों ने अपनी उम्र चालीस-चालीस वर्ष की बतलाई। यह सुन हज़रत इन्सान ने बड़ा ही पश्चात्ताप किया। तब सबोंने कहा कि भाई ! पश्चात्ताप क्यों करते हो। अगर तुम्हें विशेष उम्र ही चाहना है तो हम लोग अपनी चालीस-चालिस वर्षों में से बीस-बीस वर्ष तुमको दे देंगे, तो तुम्हारी सौ वर्ष की आयु हो जायगी और हम अपनी बीस ही बीस वर्ष किसानों के लिये रक्खेंगे ; क्योंकि चालीस वर्ष का भोग भी हम लोगों के लिये महा कठिन है। इस प्रकार इन्सान को सौ वर्ष की आयु मिली। सज्जनो ! दृष्टान्त तो यह हुआ ; अब इसका दार्ष्टान्त यह है कि जन्म से लेकर

बीस वर्ष ; जब तक मनुष्य की अवस्था रहती है, तब तक तो यह मनुष्य रहता यानी कुछ सीखता है, ब्रह्मचारी रह विद्याध्ययनादि उत्तम-उत्तम कार्य कुछ न कुछ किया करता है ; पुनः बीस के बाद जब ब्याह हुआ और बैल के बीस वर्ष आये, तब यह द्विपद से चतुष्पद (चौपाया) बन दिन-रात खूब ही कमाने और पशुवत् क्रीड़ा में मस्त रहता है ; यथा—

प्रातर्मूत्र पुरीषाभ्यां मध्याने क्षुत्पिपासया ।
तृप्ता कामेन बाध्यन्ते प्राप्ते निशि निद्रया ॥
बाल क्रीड़ा सुखाज्ञानां तारुण्ये व्यसने गतम् ।
वृद्धत्वं विकलत्वेन सदा सोपद्रवं नृणां ॥

पुनः चालीस वर्ष में जब चार बाल-बच्चे हुए, कहीं बहुएँ आईं, कहीं एक-दो नाती-बाती हो गये, तो उधर कुत्ते की बरसें भी आ गईं ; फिर तो बस यह कुत्ते की तरह कभी बच्चों से भौंकिया दौड़ता, कभी स्त्री से भौंकिया दौड़ता और कभी बहुओं को डाटता, इस अवस्था में आपके किये धरे तो कुछ होता नहीं, बस आप इन्तजामअली बन भौंकिआया करते हैं । इसके बाद जब बगुलेवाली बीस बरसें आईं, तब हाथ में माला ले पूरे बगुला बन, जैसे बगुला एक पैर का भक्त बन खड़ा हो मछली नहीं छोड़ता, बस ठीक उसी भाँति यह भी भक्त बन सम्पूर्ण अवस्थाओं से विशेष इस अवस्था में स्वार्थ-साधन में तत्पर रहता है । इसके बाद जब यह ऊँट की जिन्दगी यानी अस्सी के ऊपर आता है, तब इसके एक नकेल यानी एक आदमी इसको आगे लेकर चलता है, तब यह चल सकता है और यही इसकी नकेल है । किसी कवि ने क्या ही उत्तम कहा है कि—

जनितो मनुजो द्विपदः प्रियया सहितश्चतुरं घ्रिरभूत पशुवत्
तनयेननिते स तु षट्चरणे भ्रमतीह पुनर्मु विषट्पदवत् ॥
तनये-तनये जनितेष्टपदेरुण देव स्वयं मकरी कृमिवत् ।
अधुनाऽपि मनुष्यतनुं विदधत् किलसंभजते न हरि मुनिवत् ॥

१३—नंगा ख़ुदाई से चंगा.

एक नाऊठाकुर के एक दिन कहीं से एक अशरफ़ी हाथ लग गई, फिर तो इस कहावत के अनुसार कि—

छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई ॥

नाऊ ठाकुर बोले कि—

जो मेरे सो रजवो के नाहीं.

जब उस ग्राम के राजा ने सुना कि नौवा इस प्रकार बक रहा है, तब तो उसे शान्त करने के लिये उसकी अशरफ़ी छिनवा ली। यह दशा होने पर नाऊठाकुर ने फिर यह कहना प्रारम्भ किया कि—

रजवा गा कँगलाय हमारि लै लीन्हिसि।
रजवा गा कँगलाय हमारि लै लिन्हिसि ॥

पुनः जब राजा साहब ने यह सुना तो बोले कि बदनामी अच्छी नहीं; इसलिये उसकी अशरफ़ी दे देना चाहिये, ऐसा विचार अपने सिपाहियों से उसकी अशरफ़ी दिला दी; तब तो इस कहावत के अनुसार कि—

नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत भुइँ गिर परत खैंचत चढ़त अकास ॥

नाऊठाकुर ने यह कहना शुरू किया कि—

रजवा हमैं डेरान हमारि दै दीन्हिसि ।
रजवा हमैं डेरान हमारि दै दीन्हिसि ॥

जब राजा साहब ने यह सुना, तो बोले कि 'नंगा खुदाई से चंगा'; इसे जाने दो ।

१४—कलयुगी पंडित.

एक परिडतजी महाराज ने केवल सारस्वत ही पढ़ी थी और उसीसे आपको बड़ा अभिमान था; यहाँ तक कि अपने ग्राम में जब वे किसी साधारण पुरुष या थोड़े भाषा के पढ़े-लिखों के आगे बात-चीत करते थे, तो अपने वही सारस्वत के दो-चार सूत्र पढ़ दिया करते थे और वह बेचारे साधारण पुरुष व थोड़े पढ़े-लिखे चुप हो रहा करते थे। बस इसी प्रकार वे बड़े नामी-ग्रामी परिडत उस ग्राम में हो रहे थे कि इतने में एक दिन कोई योग्य विद्वान् उनके ग्राम में आ गये। तब तो अन्य ग्राम-वासियों ने तत्काल ही कहा कि अपने पंडितजी को लाओ, तो कुछ पंडितजी से वार्ता हो। ज्यों ही उस ग्राम के सारस्वत-ज्ञाता पंडितजी आये कि उक्त विद्वान् ने आते ही उन परिडतजी से संस्कृत में पूछा कि भवतः किं नामास्ति (आपका क्या नाम है); किं किं शास्त्रमधीतं (आपने कौन-कौन से शास्त्र पढ़े हैं); बस परिडतजी का इतना कहना था कि सारस्वत-ज्ञाता ग्रामवासी परिडत वही अपनी सारस्वत यथा—

अ इ उ ऋ ऌ सामनाः । ए ऐ ओ औ संध्यक्षराणि ॥
ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेदाः सवरणाः ॥

उचारने लगे : तब उन योग्य पण्डितजी ने कहा कि यह क्या उचारते हो ; हमने जो प्रश्न किया उसका उत्तर क्यों नहीं देते हो । तब ग्रामवासी पण्डितजी ने कहा कि हमने पढ़ा है, लिखा है ; घोखा है और तब उचारते हैं । उचारो क्या तुम, जिन्होंने न कुछ पढ़ा, न लिखा, न घोखा ; चले हैं शास्त्रार्थ करने । जाओ, अभी कुछ समय पढ़ो ; फिर शास्त्रार्थ करने आना । ठीक है कि—

रे कोकिलः कलरवै पिकतिष्ठ तूष्णा
मेतेतु पामर नराः स्वर माकलय्य ।
कोवा रटत्य यमये निकटे कटूनि
रे वध्यतामिति वदन्ति गृहीता दण्डः ॥

१५—बनावटी महात्मा.

एक साधूजी महाराज एक जगह व्याख्यान देने गये । यद्यपि आपके व्याख्यान का विषय 'गुण कर्म से वर्णव्यवस्था' और साथ ही साथ 'अछूतों का उद्धार' था ; पर बीच में आप स्त्रियों को पर्दे में देख 'परदा-सिस्टम' का खण्डन बड़े ज़ोर से करने लगे । आप बोले कि देखो आप लोगों ने बेचारी स्त्रियों को परदे में बिठा रक्खा है ; भला इनकी आत्मा कब चाहती है कि हम परदे में बैठें । देखो, जो परदा इनके सामने टँगा है, उसे फाड़-फाड़ इन्होंने चलनी बना दिया और उसकी सूराखों से सबको सब झाँक रही हैं ; भला हमारे और आपके सामने एक परदा लगा दिया जाय, तो सोचिये कि आपको

कितना कष्ट हो। जब तुममें से हरएक आदमी वक्ता को देखना चाहता है, तो क्या स्त्रियाँ देखना नहीं चाहतीं ; फिर बेचारी स्त्रियों को परदे में क्यों डाला जाय। बदमाशी तो हम लोगों के चित्तों में है और परदे में वह की जायँ ; यह कहाँ का न्याय है। इसलिये हमको चाहिये कि हम लोग अपने चित्तों से बदमाशी निकाल दें और इस परदे को हटाकर पुरुषों कि भाँति इन देवियों को भी बैठने और व्याख्यान सुनने का समय दें। देखो, सीता, दमयन्ती, गार्गी आदि में कब परदा था और यह राम, नल और याज्ञवल्क्यादि के साथ क्या परदे में रहीं। वे वक्ता साधूजी समाज के एक कमरे में ठहरे हुए थे। उनके पास ही एक स्त्री, जो पढ़ी-लिखी थी, ठहरी हुई थी। स्त्री बेचारी ने दिन में साधूजी का व्याख्यान सुना था ; इस कारण उसे पूर्ण विश्वास था कि साधूजी बड़े ही धर्मात्मा हैं। लैम्प जल रहा था, एक बजे का समय था, साधूजी उस स्त्री के कमरे में पहुँच कुछ धर्म-चर्चा करने लगे ; धीरे-धीरे फिर बड़ी-बड़ी शंकाओं का समाधान हुआ और पीछे यह चरित्र सबों ने जाना। इसलिये सज्जनों को उचित है कि परदा-प्रथा तो अवश्य ही हटावें ; क्योंकि पहले हमारे देश में यह यथार्थ में नहीं था ; बल्कि मुसलमानों के समय से ही यह परदे की प्रथा हममें घुसी है ; पर इससे प्रथम यदि आप उचित समझें, तो राम और सीता बनाने का प्रयत्न करके फिर परदा हटाइये, तो कैसा उत्तम हो। एक क्षण के कथन से ही राम और सीता किसी को न समझ लीजिये और साथ ही मेरी इस प्रार्थना पर भी अवश्य ध्यान रखिये कि यह जो बीस-बीस, तीस-तीस और चालीस-चालीस वर्ष के साधू-संन्यासी बन वक्ता बन रहे हैं इनमें न तो सब बाल-ब्रह्मचारी

ही हैं, न गुरुकुलों में रह यह उर्ध्वरेता ही हैं और न सब दया-नंद ही हैं कि वाल्यावस्था से ही सबों ने उस अकाट्य और अखण्ड ब्रह्मचर्य्य का व्रत धारण कर लिया है, जिसके लिये ऋषि दयानंद जी लिखते हैं कि जन्म से भी मनुष्य संन्यास ले सकता है, पर यह व्रत बड़ा ही कठिन है; इसमें डटना किसी विरले ही का काम है; तो क्या यह सब कम उमर के संन्यासी उन विरलों में से हैं; यदि नहीं, तो मेरी समझ में प्रत्येक संन्यासी पछत्तर वर्ष की न्यून उमर से इधर नहीं होना चाहिये और यदि कोई हो, तो वह पुरुष हो जो महान् विद्वान्, तीन-तीन, चार-चार घंटे प्राणायाम व योगाभ्यास करनेवाला तथा दिन और रात के दस बजे पर्यन्त योगाभ्यास व व्याख्यान के इधर जो समय मिले उसमें वेदों, दर्शनों और ब्राह्मणों के भाष्य तथा छोटे-छोटे ट्रैक्टों के लिखने का काम करता रहे, जिससे उसे छुट्टी न हो। उसी पुरुष को वाल्यावस्था से संन्यास का अधिकार प्रतिनिधि-सभायें दें; शेष कम उम्र के संन्यासियों से कभी लाभ नहीं और यह वर्तमान समय के संन्यासी भला वतलाइये कि सिवा लेक्चर-बाजी के कितनी-कितनी देर तक योगाभ्यास करते हैं। देखो, किसी कवि महात्मा का वाक्य है कि—

वनेऽपि दोषा प्रभवन्ति रागिणां गृहेषु पंचेन्द्रिया गृहे तपः।
अकुत्सिते कर्मणि वा प्रवर्त्तते निवृत्त रागस्य गृहं तपोवलम्॥

१६—कथा के बैंगन और हैं.

एक पंडितजी भागवत् की कथा बाँचते थे, उसमें पंडितजी की धर्मपत्नी भी कथा सुन रही थीं। तब आपने कथा बाँचते हुए कथा के मध्य में यह कहा कि मनुष्य को बैंगन कभी नहीं खाने चाहियें; क्योंकि बैंगन खाने से मनुष्य को घोर पाप

लगता है और अन्त में वह बैंगन खानेवाला नरकगामी होता है। उसके दूसरे ही दिन पण्डितजी बाजार पहुँचे, वहाँ काछी बहुत अच्छे-अच्छे गोल बैंगन लाये हुये थे। उनको देख पण्डितजी की इच्छा डोली, तब पण्डितजी दो पैसे के बैंगन खरीदकर घर ले आये। ज्योंही पण्डितजी घर में बैंगन लाये, तो पण्डितानीजी ने कहा कि यह बैंगन आप क्यों लाये; इनका कौन खायेगा और कौन पाप का भागी बन नरकगामी होगा। आपने परसों कथा में क्या कहा था। तब पण्डितजी ने उत्तर दिया कि वह तो कथा के बैंगन थे। कथा के बैंगन और होते हैं और यह बैंगन और हैं। उस दिन पण्डितानीजी ने बैंगन तो बनाये; पर यह निश्चय कर लिया कि हमारे पति परमेश्वर आचरण-भ्रष्ट अवश्य हैं। इनका कथन और है और कर्त्तव्य और है। बस उस दिन से पण्डितानीजी पण्डित की कोई बात न मानने लगीं। पण्डितजी चाहे जिस प्रकार से कहते थे, पर पण्डितानी यही उत्तर देती थीं कि आपके तो 'कथा के बैंगन और ही हैं'।

१७—बेसमझी से कार्य की आशा कैसी ?

एक ठाकुर साहब ने एक चौधरी साहब के हाथ एक चिट्ठी अपनी रिश्तेदारी को लिखकर और चौधरी साहब के आगे ही अपने अन्य कुटुम्बियों को सुनाकर चौधरी साहब को दे दी। चौधरी साहब उस चिट्ठी को ले जब ८।१० कोस की दूरी पर पहुँचे, तो एक नदी में जो बीच ही में पड़ती थी, स्नान कर धोती सूखने को फैला दी और अपने कपड़े पहन सलूके की जेब से चिट्ठी निकालकर उस चिट्ठी से बोले कि क्यों री! हमारे चबेना-पानी के लिये भी कुछ तुममें लिखा है। चिट्ठी बिचारी

जड़ कागज़ और काले अक्षर, बोले ही क्या ; पर चौधरी साहब ने चिट्ठी से दुबारा-तिबारा पूछा। जब चिट्ठी न बोली तब आप उससे बोले कि क्यों री ! तू बोलेगी नहीं ; वहाँ ठाकुर के आगे तो कटर-कटर बोलती थी ; अब हमारे वक़ में क्यों चुप है। इसलिये कही मान जा, बोल, नहीं अभी तेरी सब क़लई बना दूँगा। जब ऐसा कहने पर भी चिट्ठी नहीं बोली, तब चौधरी साहब ने चिट्ठी को ज़मीन में रख, अपना लट्ठ उठा यहाँ तक उस चिट्ठी को पीटा कि पीटते-पीटते उसकी धज्जियाँ बखेर दीं और यह भी कहते जाते थे कि ले ससुरी न बोल और फिर पीछे जो उस चिट्ठी के कण रह गये, उनको उठाकर नदी में फेंक दिया और आप वहाँ से लौट ठाकुर साहब के पास आये। तब ठाकुर साहब ने पूछा कि क्यों भाई ! चिट्ठी दे आये। यह सुन चौधरी साहब बोले कि चिट्ठी क्या दे आये ; हाल तो सुनिये। वह चिट्ठी जब आपने लिखी थी, तो वह आपके आगे कटर-कटर बोलती थी ; पर जब हम नदी पर पहुँचे, तो नहा-धोकर उस चिट्ठी से पूछा कि क्यों भाई चिट्ठी ! कुछ हमारे चबेना-पानी के लिये भी तुममें लिखा है। वह चिट्ठी न बोली, फिर हमने कई बार पूछा ; पर उसने कुछ उत्तर न दिया, तो हमें भी फिर ग़ुस्सा आ गया और हमने उसे मारे लाठियों के चूर कर नदी में बहा दिया। ठाकुर साहब ने कहा—आपने जो कुछ किया अच्छा किया।

१८—हाथी परखैं भुवन चमार.

एक बार एक राजा साहब के यहाँ एक सौदागर कुछ हाथी लेकर बेंचने की ग़रज़ से गया। तब उस दरबार में जो

लोग कुछ हाथी की परीक्षा जानते थे, सबोंने ही हाथी को देखा और हाथी की प्रशंसा की; परन्तु इतने पर भी राजा साहब का कुछ मन न भरा। उन राजा साहब के यहाँ एक भुवन नामक चर्मकार रहा करता था। वह चर्मकार बात-चीत में बड़ा होशियार और पक्का था। उसे राजा साहब ने बुलवाकर कहा कि भुवन, भला तुम तो इस हाथी को देखो कि हाथी कैसा है? यह राजा की आज्ञा पाकर भुवन हाथी के चारों ओर फिरा और बोला कि महाराज यह हाथी और तो सब प्रकार से अच्छा है, पर इसमें एक प्रबल दोष जान पड़ता है। राजा साहब ने कहा वह क्या; तब भुवन बोला कि इसके पूँछें दोनों ही ओर हैं और मुँह न जाने किस ओर है। इसका दार्ष्टान्त इस भाँति है कि इसी भुवन की भाँति आजकल बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ और दर्शनिक पण्डितों की मीमांसा कुछ उर्दू या कुछ अंगरेज़ी पढ़े या दोनों ही भाषाओं के पढ़े-लिखे महाशय करते हैं और सम्पादकों के लेख साधारण जन शोधा करते हैं।

१६—अजीब भक्ति

आजकल लोग परमेश्वर व अन्य सभी देवताओं की इस प्रकार की मनौती करते हैं कि हे सत्यनारायण! यदि मेरे पुत्र होगा, तो मैं तुम्हारी कथा कहाऊँगा; मेरे अमुक खेत में अगर पचास मन गेहूँ हुए, तो मैं कथा कहाऊँगा। अन्य देवताओं के लिये भी मेरा ऐसा कार्य हो जायगा, तो मैं आपकी पूजा करूँगा। उसमें भी वह कार्य होने पर जब वह पूजा करते या कथा कहलवाते हैं, तो लोग दरवाज़े घंटा सुना करते

हैं और कहते हैं कि अभी तो वहाँ लगा हो लगा है; अभी से वहाँ चलकर क्या करोगे या अभी तो एक ही अध्याय या दो अध्याय हुए हैं। इस प्रकार प्रयोजन यह है कि प्रसाद ही के समय वहाँ तशरीफ़ ले जाते हैं। अब सोचिये कि इन्होंने परमेश्वर सत्यनारायण अथवा अन्य देवताओं को क्या कुली नहीं समझा। इस पर आप कहेंगे कि कुली कैसा? सुनिये, जिस प्रकार मुसाफ़िर कुलियों से कहते हैं कि यदि तुम हमारा अमुक सामान यहाँ से वहाँ पहुँचा दो, तो हम तुम्हें इतनी मज़दूरी देंगे: इसी भाँति जब परमेश्वर आपको धन, पुत्र और पौत्र दे, तब आपकी वह दो कुड़वरियाँ पाये; ऐसो यह आपकी कुड़वरियों, पंजीरी और पञ्चामृत का भूखा है। भला जब वह पचास मन जिस बनाकर देगा, तो क्या उसी में से चार कुड़वरियाँ अपने लिये न पैदा कर लेगा। तुम्हें पचास मन गेहूँ देकर आपके कुड़वरियों की इच्छा क्यों करेगा?

२०—त्रिया-चरित्र जानै नहि कोय, खसम मारि कै सती होय.

एक राजा ने बहुत कुछ विद्या पढ़ी; पुनः जब अध्ययन कर घर आया; तब एक दिन वह किसी बात पर अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो गया। उसकी माता ने कहा कि बेटा सब कुछ तो पढ़ा; पर अभी त्रिया-चरित्र नहीं पढ़ा। अपनी माता का यह वाक्य सुन वह राजा त्रिया-चरित्र पढ़ने के निमित्त अपने घर से चल दिया। बहुत समय इधर-उधर बहुत कुछ परिश्रम करने के पश्चात् एक स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर वह कुएा-

क्षण भर में कभी रोता, कभी हँसता, कभी गाता। यह दशा देख एक स्त्री इसके पास आई और उसने इससे प्रश्न किया कि क्षण-क्षण में आपकी दशा ऐसी क्यों हो जाती है। तब इसने उस त्रिया-चरित्र के परीक्षार्थ उस स्त्री से कुछ विषय-वासना की वार्ता की। उस वार्ता से उस स्त्री ने जब इससे मित्रता जोड़नी चाही, तब राजा ने कहा कि यदि तुमको हमसे मित्रता जोड़नी स्वीकार हो, तो पहिले तुम अपने पति को आज ही मार आओ, तब हम तुमसे मित्रता करेंगे। स्त्री ने यह स्वीकार कर अपने घर जा उसी दिन रात में अपने पति को मार प्रातः होते ही राजा के पास आई। राजा चलने को तय्यार ही था कि इतने में स्त्री भी आ गई। तब इस स्त्री ने कहा कि अब मुझसे यह कर्म कराकर अकेले कहाँ जाते हो, मुझे भी साथ ले चलो। तब राजा ने उत्तर दिया कि जब तू अपने पति की न हुई, जिसके साथ पाणिग्रहण हुआ था और जिसका कि तूने चार विद्वानों के सामने पालन-पोषण करने का प्रण किया था, तो तू हमारे साथ क्या भलाई करेगी। यह कह वह राजा चला गया। पुनः स्त्री ने वहाँ से अपने घर आ बड़ा ही कोलाहल मचाया कि मेरे पति को न जाने कौन मार गया। इस कोलाहल के कारण वहाँ के राजा ने इस बात की जाँच में कितने ही मुहल्ले के पुरुषों को बड़ा कष्ट दिया। अन्त में वह स्त्री अपने पति का शिर ले सती होने को तय्यार हुई। इतने में वह राजा भी जो त्रिया-चरित्र पढ़ने को चला था और जिसके कहने से उसने अपने पति का शिर काटा था आ गया और उस राजा ने उस ग्राम के राजा के प्रति सब सच्चा-सच्चा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। जभी से यह कहावत प्रसिद्ध हुई कि "त्रिया-चरित्र जानै नहिं कोय, खसम मारि कै सत्ती होय।"

२१—यह अन्धेर कब तक चली, जब तक चली तब तक चली

एक राजा के यहाँ एक मूर्ख ब्राह्मण पहुँचे। राजा साहब से साष्टाङ्ग प्रणाम होने के पश्चात् ब्रह्मदेव ने अपनी जीविका के लिये राजा साहब से कुछ प्रार्थना की। तब राजा ने पूछा कि कहिये महाराज! आप कुछ पढ़े-लिखे भी हैं या नहीं। तब ब्रह्मदेव जो मूर्ख तो थे ही और कहते ही क्या, बोले कि यही कुछ जप और पूजा-पाठ जानते हैं। तब राजा ने कहा कि अच्छा, आप हमारे स्थान में बैठकर जप कीजिये; आपको भोजन और वस्त्र राज्य से मिलेगा। ब्रह्मदेव उस स्थान पर बैठ नित्य नहा-धोकर यह जपा करते थे कि 'जप जपत हनु, जप जपत हनु'; कुछ ही समय के बाद जब एक दूसरे ब्राह्मण आये और उन्होंने यह देखा कि राजा के बिना पूछे ही उसी ब्राह्मण के बराबर आसन डाल यह जपने लगा कि 'जौन ई जपैं तौन हमहूं जपतु'; यह सुन राजा इसे भी भोजन वस्त्र देने लगा; तब तक एक तीसरे महाशय आकर वहीं बराबर आसन डाल यह जपने लगे कि 'यह अन्धेर कब तक चली, यह अन्धेर कब तक चली' राजा इस तीसरे को भी भोजन-वस्त्र देने लगा; इतने में एक चौथे द्विजराज आकर वहीं बराबर आसन डाल यह जपने लगे कि 'जब तक चली तब तक चली।' राजा इस चौथे को भी उक्त तीनों के समान ही भोजन-वस्त्र देने लगा। पुनः बहुत समय के बाद राजा साहब ने एक दिन आकर यह जानना चाहा कि यह ब्राह्मण क्या जप करते हैं। तब राजा ने उन लोगों से पूछा तो—

उघरै अन्त न होय निबाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥

इस कथन के अनुसार बेचारे अलग कर दिये गये ।

२२-मन में है सो हुवहै

बहुत से पुरुष आजकल तर्क और विज्ञान के अभिमान में आकर न सन्ध्या, न अग्निहोत्र, न पाठ, न पूजा, न जप, न तप, कुछ नहीं ; बस शूद्रों की भाँति देह पर पानी डाल दूसरी धोती पहन भीगे हुए बालों से युक्त कोई-कोई कुछ शीशा-कंघा कर चौके में जा पड़ते हैं और किसी दूसरे के आदेश करने पर भी यह उत्तर देते हैं कि बाहरी प्रपञ्च से क्या ; मन में है सो हैहै ; और मन में ही रखना चाहिए। इस प्रकार भाई ! हम तो मानसिक पूजा किया करते हैं। ठीक है, इन महात्माओं के लिये हम आपको एक दृष्टान्त सुनाते हैं। यथा—

एक पौराणिक महानुभाव थे, जिनकी स्त्री का नाम गंगा था। वह एक बार सपत्नी गंगा-स्नान करने गये, तो गंगा-स्नान करने में वहाँ बहुत से स्त्री-पुरुष स्नान कर रहे थे और प्रायः सभी लोग स्नान करने के समय कुछ न कुछ पढ़ते जाते थे। कोई 'गंगा तव दर्शनात् मुक्ति न जाने स्नानं फलं' ; कोई 'गंगा गंगेति यो ब्रूयात्' ; कोई 'हर-हर गंगे भगीरथी, पाप काटैं गोमती नदी' ; इस प्रकार सबको कुछ न कुछ कहते हुए देख यह पौराणिक महाशय 'हर-हर गंगे' तो इस कारण न कह सके कि इनकी स्त्री का नाम गंगा था, सो भी इनके साथ ही उपस्थित थी ; बोले कि मन में है सो हैहै, मन में है सो हैहै ।

२३-चुग़ुलखोर.

चुग़ुलखोर ऐसे प्रबल होते हैं कि चाहे जिसमें कितना ही मेल हो, पर वह अपना काम पूरा करके ही मानते हैं। एक बड़े प्रसिद्ध चुग़ुलखोर थे। उनसे एक पुरुष ने कहा कि आप चुग़ली करने में बड़े प्रसिद्ध हो; पर इन स्त्री-पुरुषों में बड़ा ही अटूट मेल रहता है; इनमें यदि तुम विरोध करा दो, तो हम आपकी चुग़ली प्रशंसनीय समझें। उसने कहा—बहुत अच्छा। अब तो चुग़ुलखोर जी इस टोह में फिरने लगे कि इसकी स्त्री से किसी प्रकार हमसे बातचीत हो जाय, तो हम इन स्त्री-पुरुषों में अवश्य विरोध करा दें। अन्त में तो आप जानते ही हैं कि जो जिस बात की टोह में रहता है, उसे वह अवश्य मिल जाता है। अतः जब उस पुरुष की स्त्री इसे मिली, जिन स्त्री-पुरुषों में यह विरोध कराना चाहता था; तो उस स्त्री से यह और बहुत सी बातें कर उससे बड़ी प्रीति जोड़ी। अनायास एक दिवस बात-चीत करने में उस स्त्री से यह बोला कि तुम्हारा पति उस जन्म का नोनिया है। तब स्त्री ने प्रश्न किया कि आपको यह कैसे मालूम हुआ? तब उसने कहा कि—'प्रत्यक्षसि प्रमाणं किं' प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण ही क्या; तुम आज ही रात्रि में जब तुम्हारा पति सो जाये, तो उसकी देह चाटकर देख लो। अगर वह नोनखरा यानी नमकीली हो, तो समझ लेना कि नोनियाँ है और न नोनखराय' तो हमारी बात को झूठा समझना। इसी भाँति उसके पति से भी बहुत समय से प्रीति तो जोड़ ही रक्खी थी; अतः जिस दिन स्त्री से इसने यह बात कही उसी दिन चन्द मिनटों ही के पश्चात् उस स्त्री के पति से यह कहा कि आपकी स्त्री उस जन्म की सर्पिणी है, सो यह नित्य रात में आपको

खाने को चाहती है; पर कभी कोई और कभी कोई आपके घर में जग जाता है; इसलिये आप आज तक बचते चले आते हैं। यदि आपको विश्वास न हो, तो आज ही रात में जागकर देख लीजिये। बस जब वह स्त्री-पुरुष उस रात में इकट्ठे हुए, तो स्त्री इस घात में थी कि यदि मेरा पति सो जाय, तो मैं इसे चाटकर देखूँ कि यह नोनियाँ है या नहीं और पुरुष ने सोचा कि अब मैं झूठमूठ आँखें मूँद सोने के बहाने से इसे देखूँ; यह खाने को दौड़ती है या नहीं। अतः ज्यों ही पुरुष ने आँखें मीचीं और कुछ देर हुई कि स्त्री ने जाना कि अब मेरा पति सो गया है; तब तो वह जीभ निकाल पैरों के तलवे चाटने लगी। पुरुष इस चिन्ता में जग ही रहा था बस पति ने यह देख स्त्री को बहुत पीटा और कहा कि दुष्टा मैंने निश्चय जान लिया कि तू पक्की सर्पिणी है। बस लोगो! इन चुगुल-खोरों के पास मत बैठो और न इनकी ओर अपने कान लगाओ। यह स्त्री-पुरुषों में भी बिगाड़ करा देते हैं और बड़े-बड़े घर इन्होंने घाले हैं। यथा—मन्थरा ने महाराज दशरथजी का घर बिगाड़ा था—

एक लाख मइया की डेढ़ लाख कहैं जरी की ढाई लाख माऊर की बनी मजबूती हैं। तीन लाख चौबेपुर की चार लाख दुन्दपुर पाँच लाख कारी की सिलाई जिनमें सूती हैं। छै लाख जैतपुर की सात लाख बिरहुन आठ लाख शिवलों की खुनुआ की गूथी हैं। बारा लाख कानपुर के बूट बने डासन के चुगलों की चाँद पे पचास लाख जूती हैं॥

२४-ईश्वर-भक्ति

एक बार बादशाह अकबर शिकार खेलने के लिये निकले और शिकार खेलते-खेलते बहुत दूर निकल गये। वहाँ बादशाह साहब परिश्रम के कारण अधिक पिपासित हो रहे थे, तब तक एक ग्राम से कुछ दूर पर एक गड़रिया अपनी भेड़ें चुगा रहा था। बादशाह उस गड़रिये के पास पहुँचकर बोले कि ओ भइया चरवाहे! तुम कौन लोग हो? इसने कहा कि सरकार मैं गड़रिया हूँ। तब बादशाह ने कहा कि मुझे इस समय प्यास बड़े जोर से लगी हुई है; यदि कहीं पानी हो, तो पिलाओ। गड़रिये ने कहा कि पानी तो यहाँ नहीं है; पर हुजूर अगर कोई बरतन हो, तो मैं आपको दूध पिला सकता हूँ। यह सुन बादशाह ने अपने पाकिट से एक बड़ा ही उत्तम कटोरा निकालकर उस गड़रिये को दिया। गड़रिये ने कटोरा ले अपनी चुगती हुई बकरियों से एक बकरी को दुह बादशाह के सामने अति नम्रता से दूध लाकर उपस्थित किया। बादशाह उस दूध को पीकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और गड़रिया से बोला कि क्यों भाई गड़रिये! क़लम-दावात तो मेरे पाकेट में मौजूद है; परन्तु यहाँ कोई काग़ज़ नहीं; नहीं तो मैं तुझे अभी कुछ लिख देता। यह सुन गड़रिये ने एक पीपल का पत्ता उठाकर बादशाह सलामत को दे दिया और कहा कि हुजूर, जो कुछ दें, इस पर लिख दें। बादशाह ने उस पर पाँच गाँव गड़रिये को लिख दिये और कहा कि तुम हमारे यहाँ आना, तो अपने गाँव भी देख जाना और वहीं से अपनी मालगुजारी ले आया करना। तुमको और भी कुछ देंगे। यह पत्ती भूमि के एक जगह रख बादशाह को भेजने गया। बादशाह को भेज सलाम कर जब गड़रिया

लौटा, तो क्या देखता है कि मुनिया भेड़ वह पत्ता खा रही है। यह देख चिल्लाया कि मेरी भेड़ मुनिया पाँच गाँव खा गई, तब दूसरे चरवाहे दौड़े और उससे कहा कि क्या कहता है; भेड़ कहीं गाँव खा सकती है! मुनिया भेड़ कैसे पाँच गाँव खा गई! तब इसने उन चरवाहों से सारा क़िस्सा कहा। पुनः वहाँ से आकर यह सब समाचार अपनी स्त्री से कहा। स्त्री ने उस पत्ते के खा जाने का अति शोक किया; पर क्या? पुनः कुछ समय के पश्चात् गड़रिये की स्त्री ने अपने पति को बादशाह के पास भेजा। यह पूछते-पूछते दिल्ली पहुँचा। यहाँ पहुँच शहर के लोगों से पूछने लगा कि क्यों भाई यहाँ कहीं अकबरा रहता है। तब तो लोगों ने कहा कि क्या तू पागल है? क्या कहता है; बादशाह को कोई ऐसे कहता है। तब उसने कहा कि बादशाह तो मेरे परम मित्र हैं। यह सुन लोग इसकी ओर देख और एक जाहिल जान सोचा कि भला इससे और बादशाह से क्या दोस्ती होगी। फिर लोगों ने इससे कहा कि अब ऐसे मत कहना; बल्कि शहनशाह आलम ऐसा कहना। भला इससे यह कहते कब बन सकता था। अब इसने उनके आदेशानुसार बादशाह अकबर ऐसा कहकर पूछना शुरू कर दिया कि इतने में बादशाह सलामत की सवारी निकली। तब लोगों ने कहा कि देखो वह बादशाह की सवारी जा रही है। तब तो इसने बड़े ज़ोर से आवाज़ लगाई कि 'ओ भाई!' अकबर बादशाह इस आवाज़ को सुनकर पीछे देखने लगे और इसे पहचान अपनी विपत्ति का सहचर जान सवारी खड़ी कर दी और इस गड़रिये से हाथ मिला इसको अपने घोड़े-गाड़ी पर बिठा लिया। लोग ताकते ही रह गये। पुनः इससे कुशल-प्रश्न पूछ जब बादशाह अपने महल में पहुँचे, तो अपने सेवक ब्राह्मणों को यह आज्ञा दी कि जिस प्रकार नित्य मेरे लिये उत्तम भोजन तय्यार होता है,

जैसे ही हिन्दू-धर्म के अनुसार उत्तम से उत्तम भोजन इस मेरे मित्र के लिये बनवाओ। यह आज्ञा दे उस गड़रिये को ले बादशाह अपनी गद्दी पर पहुँचा। वहाँ के महलों की शोभा देख यह चकाचौंध में पड़ गया। बहुत काल तक यह उसी उधेड़बुन में लगा रहा कि इतने में बादशाह की नमाज़ का समय आन पहुँचा। तब तो बादशाह ने उस गड़रिये से कहा कि आप तशरीफ़ रखिये; मैं नमाज़ पढ़ के अभी हाज़िर हुआ। यह कह बादशाह वहीं सामने दूसरी बैठक में जाकर नमाज़ पढ़ने लगा। बादशाह को नमाज़ पढ़ते देख यह गड़रिया बारम्बार हँस रहा था। जब बादशाह नमाज़ पढ़कर आये, तब यह गड़रिया बोला कि कहो यार अकबर! तुम यह क्या करते थे? बादशाह ने कहा कि नमाज़ पढ़ते थे। तब इसने कहा कि नमाज़ क्या? बादशाह ने उत्तर दिया कि खुदा की इबादत। फिर भी इसने वही प्रश्न किया कि इबादत क्या? बादशाह ने कहा कि हम उस खुदा से हर चीज़ माँगते थे। इसने कहा कि ओ हो! आप भी किसी दूसरे से माँगते हैं। यह कह उठकर चल पड़ा। बादशाह ने कहा कि कहाँ जाते हो? तब इसने कहा कि अपने घर। बादशाह ने कहा कि हमने आपके लिये अभी भोजन तय्यार कराया है, अभी आप आये हैं, रहिये, ठहरिये; फिर आपको कुछ और देकर बिदा करेंगे। तब तो इस गड़रिये ने कहा कि जब आप ही दूसरे से माँगते हैं, तो आप हमें क्या देंगे और फिर जिससे आप माँगते हैं उसीसे हम भी माँग लेंगे; वह क्या हमें न देगा? ऐसा कह वहाँ से यह चल पड़ा और मार्ग में ऊपर को शिर करके करुणेश्वर से बोला कि हे प्रभो! क्या अकबर से ही आपकी विशेष पहिचान है? यह कह ज्योंही लघुशंका करने लगा कि इसको अशरफ़ियों से पूर्ण दो हंडे दिखलाई पड़े। तब तो यह

बोला कि मैं यहाँ से बोझा ढोनेवाला नहीं। अगर तुझे देना है, तो वहीं मेरे घर पर दे। यह कह गड़रिया घर पीछे लौट आया। परमेश्वर ने यहाँ उसके घर पर ही गड़रिया के आने के पहले ही सब कुछ दे दिया।

२५–बुरी शिक्षा का फल.

एक छोकरे ने अपने साथी की एक पोथी चुराई। वह उसको अपनी माँ के पास ले आया। माँ उसको प्यार करने लगी और ऐसा बुरा काम करने से उसे न रोका। इस कारण जैसे-जैसे वह छोकरा बड़ा होता गया तैसे-तैसे उसकी चोरी की बुरी बान भी बढ़ती गई; यहाँ तक कि वह एक दिन भारी चोरी में पकड़ा गया और अदालत से उसको फाँसी का दण्ड मिला। उसकी माँ रोती-पीटती उस जगह पर पहुँची जहाँ उसको फाँसी लगने को थी। छोकरे ने अपनी माँ से अपने दिल की बात कहने के लिये अफ़सरों से आज्ञा माँगी। इस बहाने से जब उसने अपनी माँ के कान के पास अपना मुँह लगाया, तो कच-कचा के दाँतों से उसका कान काट लिया। यह देख लोगों का दिल उस छोकरे की ओर से बहुत गिर गया। तब वह बोला कि आप देखते हैं कि मैं किस आफ़त में पड़ा हूँ; पर इस बात को आप लोग सच जानिये कि मैं इस आफ़त में अपनी माँ के कारण पड़ा हूँ। यदि वह मुझको मेरे बचपन में चोरी करने को मना करती, तो आज दिन मैं चोरी के लिये फाँसी न पाता।

२६–पातिव्रत.

एक महापुरुष ने अपनी स्त्री से एक बार कहा कि आइये

लक्ष्मीजी ! पति का इतना कहना था कि उसकी स्त्री अपने पति की माता से बोली कि—

सासुल तुम्हारे पुत्र ने, धर्‌यो लक्ष्मी नाँव ।
वा कुतिया घर-घर फिरे, मैं काके घर जाँव ॥

यह सुन माता ने अपने पुत्र से कहा कि बेटा तुम बहू को आज से लक्ष्मी न कहना ।

२७—असची.

एक महाशय एक ब्राह्मण के यहाँ पहुँचे । उस बेचारे दीन ब्राह्मण ने अपने यहाँ अतिथि आया जान कुछ लोटिया-थारी कर उन अतिथि के भोजनों का प्रबन्ध किया ; यानी पूड़ी, तरकारी, दही, बूरा इत्यादि-इत्यादि सभी कुछ तय्यार कराया । उस दीन ब्राह्मण के लड़के घर में पूड़ियाँ होते देख बड़े ही प्रसन्न थे और अपनी माँ से बार-बार कहते थे कि अम्माँ ! हमको भी पूड़ी दोगी । माता अपने प्यारे पुत्रों से कहती थी कि बेटा ! अतिथि को भोजन कर जाने दो, फिर पूड़ी लेना । बच्चे बिचारे आसरा लगा चुपचाप बैठ गये । ब्रह्मदेव ने अतिथि को ला भोजन कराया । यह जाने कब का भूखा-टूटा, कहाँ का मारा-धवा कि सबका सभी भोजन खा गया; एक ग्रास भी शेष न छोड़ा । बच्चे विचारे आँखों में आँसू ढप-ढपाये हुए बैठे ताक रहे थे । अतिथि चौके से बाहर उठ हाथ-मुँह धो इस अभिप्राय से कि कदाचित् कहीं पैरों में भी जूठन न लग गई हो पैर धोने लगा । तब तो बच्चे ने कहा कि दादा यो फिर सार पैर ध्वावति है । एक बार माँ तो चौका साफ़ करिगा अब न जाने सार का करी ।

२८—विचित्र तार्किक.

एक काने को देख एक आँखवाले बोले कि ओ कनऊ ! जब वह न बोला, तो फिर दुबारा 'ओ कनऊ' कहा ; जब वह पीछे देखने लगा तो बोले कि अबे काने सुन। तब उसने कहा कि आप मुझे कनऊ क्यों कहते हो ? पहिले पुरुष ने उत्तर दिया कि तुम्हारे आँख एक ही है, इसलिये हम कनऊ कहते हैं। उसने कहा कि आँखें तो हमारे दोनों हैं। देखो, एक यह और एक यह। तब उस प्रथम पुरुष ने कहा कि हाँ, आँखें तो जरूर आपके भी दो हैं ; पर एक आँख के कुछ विकृत होने से आपको दिखलाई कम पड़ता है। इस बातचीत में और दो-चार मनुष्य एकत्रित हो गये। तब वह काना बोला कि इस बात का क्या सबूत है कि मुझे कम दिखलाई पड़ता है और आपको विशेष दिखलाई पड़ता है। तब उस काने ने कहा कि अच्छा यों सही। बोलो, तुम्हें मेरी कै आँखें दिखलाई पड़ती हैं। आँखियारे ने कहा कि एक। काने ने कहा कि आपको मेरी एक आँख दिखलाई पड़ती है और मुझे तुम्हारी दोनों आँखें दिखलाई पड़ती हैं। बतलाइये कि ज्यादा किसे दिखलाई पड़ता है। आँखवाले महाशय चुप हो गये, तब तो उसने कहा कि इसलिये काने तुम हो, न कि हम।

२९—सहन-शक्ति.

एक महाशय शरीर से बड़े हृष्ट-पुष्ट और पढ़े-लिखे भी थे। बस इसी अभिमान में आप मस्त रहा करते थे। अनायास ही एक बटोही को आप गाली देने लगे। बिचारा बटोही कुछ भी न बोला। जब इन्होंने अपनी गालियों का प्रवाह न रोका, तब

बटोही लौटकर बोला कि भाईजी ! तुम किससे कहते हो ? उस उद्दण्ड ने उत्तर दिया कि तुमसे। तब बटोही ने कहा कि तुम्से कहते हैं, तो आप कहे जाइये, मैंने जाना कि आप मुझसे कहते हैं।

३०–किसीको तुच्छ मत समझो.

एक पुरुष ने एक बार किसी महाराजा से कहा कि अमुक पुरुष आपके राज्य में ऐसा निसोढ़ा है कि यदि उसका मुख कोई प्रातःकाल उठकर देख ले, तो उसको दिन भर भोजन न मिले। यह सुन महाराज ने कहा कि यदि ऐसा है, तो कल प्रातः उठकर सबसे पहिले हम उसीका मुख देखेंगे और यदि आपकी बात सत्य हुई, तो मैं इसका उचित प्रबन्ध करूँगा। राजा ने दूसरे दिन प्रातःकाल उस मनुष्य को बुलवा उसीका दर्शन किया। इत्तिफ़ाक़ की बात, राजा को उस दिन, दिन भर भोजन करने का सुभीता न लगा; अतः राजा ने उसको मन्दभागी जान सूली का हुक्म दिया और कहा कि सुना तुमको इसलिये फाँसी हुई कि आज प्रातःकाल हमने तुम्हारा मुख देखा; सो हमें दिन भर भोजन न मिला इसीलिये तुमको सूली हुई। अपराधी ने उत्तर दिया कि आपने मेरा मुख देखा सो आपको तो दिन भर ...ज नहीं मिला और मैंने आपका मुख देखा, सो मुझे फाँसी हुई, तो अब आपको क्या होना चाहिये।

३१–बुद्धिमानों की जमात.

तीन मनुष्य मार्ग में जा रहे थे; उनमें एक बोला कि क्यों यार, जब यह ताल तलैया सूख जाते होंगे, तब इनमें रहनेवाली

मछलियाँ, मेंढक, केचुआ आदि यह सब जल-जीव कहाँ चले जाते होंगे। यह सुन दूसरा बोला—वाह ! यह कौन बड़े विचार की बात है। इन ताल-तलइयों का पानी जब सूख जाता है, तब यह जल-जीव इनके पास के दरख्तों पर चढ़ जाते होंगे। अब तीसरा बोला वाह ! आपने खूब कही ; भला यह जल-जीव कोई बैल-गोरू हैं, जो दरख्तों पर चढ़ जाते होंगे।

कहीं मार्ग में दस पुरुष जा रहे थे। जब उन लोगों को मार्ग में एक नदी पार करनी पड़ी, तो वे सब पार हो बोले कि अपने सब आदमियों का शुमार कर लेना चाहिये कि हम दसों मौजूद हैं या नहीं। उनमें जो गिनता था, वह अपने को छोड़ शेष गिन लेता था ; इस भाँति सबों ने गिने। सबों के गिनने पर वे नौ ही रहे। यह देख सब बैठकर रोने लगे कि हाय, हाय ! हमारा साथी डूब गया। तब तक एक दूसरा पथिक सवार आ निकला। इसने उन सबों को रोते देख पूछा कि तुम सब क्यों रो रहे हो ? तब उन्होंने कहा कि भाई ! हम दस आदमी घर से चले थे ; सो एक हमारा साथी इस नदी में डूब गया। तब सवार ने कहा कि अच्छा, तुम अपने आदमी गिनो तो। वे बेवकूफ वैसे ही पहिले की भाँति अपने-अपने को छोड़ नौ ही गिनें। पुनः सवार ने सबको एक क़तार में खड़ाकर दसों गिन उन्हें संतुष्ट किया।

३२—डबल बेवक़ूफ़

एक किसान के पास एक ऊँट था। उसके चराने के लिये उस काश्तकार ने उस डबल बेवकूफ को नौकर रख छोड़ा था ; पर यह बेवकूफ जिन्दगी भर तो इस काश्तकार के यहाँ नौकर रहा ; पर न तो मालिक ही का इसने नाम याद कर पाया और

न ऊँट, इस शब्द ही को जानता था। अतः एक दिवस अचानक वह ऊँट जङ्गल में चराते हुए खो गया। तब यह डबल बेवकूफ़ उस ऊँट को ढूँढ़ने लगा। कुछ देर के बाद ढूँढ़ते हुए उसको एक लेंड़ी मिली। तब यह उस लेंड़ को उठाकर एक दूसरे जाते हुए पथिक से दिखलाकर बोला कि कह्यो जाय घर उनके रहत रहेन हम जिनके हेराय गे हैं उइ हगत ते जी ई।

३३—पादरी साहब

एक पादरी साहब एक मेले में उतरते हुए चंद हिन्दुओं को एकत्रित देख बोले कि तुम लोग गौ को अपनी माता कहते हो, तो बैल तुम्हारा बाप हुआ और वह भी विष्ठा खाता है। तब उनमें से एक हिन्दू बोला कि कोई ईसाई हो गया होगा।

३४—अपनी औक़ात को न भूलना

एक सिंहिनी और एक कुतिया दोनों में परस्पर बड़ी मित्रता थी। कुछ समय के बाद कुत्ती अपने दो बच्चों को छोड़कर मर गई और उसके बच्चे भूखों मरने लगे। यह देख सिंह्नी को तरस आया और वह उन बच्चों को अपना दूध पिलाने लगी। जब वे बच्चे कुछ बड़े हुए, तब उस सिंहिनी के बच्चों की बराबरी करने लगे। यह देख सिंहिनी को कुछ खिन्नता प्राप्त हुई कि यह कुत्ती के बच्चे मेरे बच्चों की समता करने लगे हैं। कुछ काल पश्चात् वहाँ से एक मतवाला हाथी आकर निकला; तब तो उस सिंहिनी ने कुत्ती के बच्चों से कहा कि तुम दोनों जाकर इस हाथी का शिकार लाओ। कुत्ते उसकी आज्ञा पाकर गये तो ज़रूर; आख़िर कुत्ते ही तो ठहरे; वे बेचारे भला उस मतवाले हाथी का कर

ही क्या सकते थे। अतः वे कुछ दूर भूक-भौंककर लौट आये। तब सिंहिनी ने अपने बच्चों को आज्ञा दी कि बेटो! वह एक बड़े मतवाले हाथी का शिकार जा रहा है। उसका मस्तक विदीर्ण-कर शीघ्र उस शिकार को लाओ। सिंहिनी के बच्चों को क्या; सिर्फ़ आज्ञा पाने ही की जरूरत थी; फ़ौरन वे बच्चे हाथी पर टूट पड़े और उसे फाड़कर माता के आगे लाकर रख दिया। तब सिंहिनी ने कुत्ती के बच्चों से कहा कि देखो, तुम अपनी औक़ात को कभी न भूलना। देखो, तुम हमारे लड़कों की बराबरी करते हो। कहाँ मुझ सिंहिनी के बच्चे, और कहाँ तुम कुतिया के बच्चे।

३५–शैतान के चचा

एक बार कुछ लड़कों और शैतान में वाद-विवाद हुआ। लड़के कहते थे कि हम बड़े और शैतान कहता था कि मैं बड़ा। इस प्रकार दोनों में बड़ी हुज्जत हुई; आख़िर शैतान एक गधे का रूप रखकर लड़कों में आ घुसा और चारों ओर दुलत्ती झाड़ने लगा; अतः बालक बहुत हैरान और परेशान हुए। आख़िर उन सब लड़कों ने अपनी जान हथेली पर रख ली। उनमें से तीन-चार ने तो उसकी पीठ पर सवारी की, अब शेष जो तीन-चार बच्चे उन्होंने आपस में यह मशविरा किया कि अब इसके पाख़ाने के मुक़ाम में एक डण्डा कर तीन-चार को उस पर बैठना चाहिये। बच्चों ने वैसा ही किया; बस, जभी से यह मसल मशहूर हुई कि लड़कों से शैतान भी हारे हैं।

३६—दो व्याह.

एक लाला साहब का एक व्याह तो हो ही गया था; पर जब लालाजी के कुछ बाल काले और कुछ सफ़ेद हुए, यानी जब अधपक्के हुए और लालाजी के औरत के बाल बिलकुल सफ़ेद हो गये यानी जब बुढ़िया हो गई, तब लालाजी ने अपनी दूसरी शादी की। कुछ दिन बड़ी ही शौक़-ज़ौक़ में ठाठ से बीते। लम्पट होने के कारण यद्यपि लालाजी के युवा स्त्री आ गई थी; पर कभी-कभी वे बूढ़ा की भी याद कर लिया करते थे। उन दोनों औरतों में जब कभी युवा औरत लालाजी के शिर के जूँ बिनती थी, तो सफ़ेद-सफ़ेद बालों को जूँ बीनने के साथ ही बीन डालती थी और जब कभी बूढ़ा माई लालाजी का शिर देखती थीं, तो यह काले बाल सब बीन डालती थीं; ग़रज़ दोनों ने मिलकर लालाजी की चाँद में एक बाल भी बाक़ी नहीं छोड़ा। इससे दूसरा व्याह करना सर्वथा पाप और शास्त्र-विरुद्ध है।

३७—अनाथ-रक्षा.

एक पुरुष छप्पन के साल में जब भारत में घोर दुष्काल पड़ा था, उस समय में अनायास मेवाड़ की ओर पहुँचा। वहाँ पर देसे तो चारों ओर ही त्राहि-त्राहि मची हुई थी; लोग सूख-सूख कर पञ्जर हो गये थे; वृक्षों की छाल वृक्षों में नहीं रही थी; ऐसी अवस्था में उसने एक औरत देखी, जिसके कि चार बेटे थे। वह औरत और उसके बालक तो यहाँ तक कृश हो गये थे कि केवल अस्थि-चर्मावशिष्ट ही रह गये थे। जिनके सींक से हाथ-पैर, चलने में डग-डग, आँखें गड्ढों में गई हुई, दृष्टि कमज़ोर,

पड़ गईं। जहाँ कहीं कोई दाना यदि पड़ा मिला जाता था, तो झट उठाकर खा जाते थे। एक दिन जब उन्हें कुछ न मिला, तो कुत्तों ने जो मक्का खा-खाकर हग दी थी, उसी मक्का को पाखाने से वह औरत धो रही थी। तब उस पुरुष ने पूछा कि इस मक्का को तू क्यों धो रही है; इसको क्या करेगी? इस प्रश्न के साथ ही उसकी आँखों से छल-छल आँसू गिरने लगे और बोली कि इस अन्न को खाकर इस पेट की भभक मिटाऊँगी। वह दिन तो इसका इस प्रकार गया, दूसरे दिन अपने दो लड़कों को इसने केवल दो रुपये पर एक बनिये के हाथ बेच डाला। चार दिन इसके इस भाँति व्यतीत हुए; पुनः पाँचवें दिन यह एक-जंगल में लकड़ियाँ बीन-बीन करके इकट्ठी कर रही थी। कुछ काल के बाद उस पुरुष ने देखा कि उसने लकड़ी इकट्ठा कर उनमें आग लगा अपने नयनों के तारे प्राण दुलारे को अग्नि में डाल दिया और भूनने लगी। यह देख वह पुरुष वहाँ गया और कहा कि यह क्या कर रही है। हाय! हाय!! क्या लड़के को भून रही है? यह बालक तेरा कौन है? इसने उत्तर दिया कि मेरा पुत्र है। क्या करूँ? यह अभागा पेट चाहे सो कराये। इस पर ही अभी वह पापिनी दो दिन और उपस्थित रही और तीसरे दिन उसने प्राण त्याग किये। तब वह बच्चा, जो दो साल का था, उस मृत माता का स्तन नोच रहा था कि इतने में एक ईसाई आकर उस बच्चे को ले गया। सज्जनो! इस देश की मुख्य पूँजी क़ौम है। क़ौम की सन्तान इस प्रकार गुम हो और फिर भी हमारे कानों पर जूँ न रेंगे; अफ़सोस की बात है।

तातः को जननी च के हितरताः को बाथवा बान्धवा।
किं वासो भवनंच किं किमसनं को वारि वातश्चकः॥

जानीमो न दयानिधे सुरपतेत्वं नाम जानीमहे ।
हा हा नाथ अनाथ रक्षक विभो मां पाहि पाहि प्रभो ॥

३८-विधवाओं की दशा.

ज़िला उन्नाव में एक अच्छे खानदान के घराने की लड़की, जिसका कि उसके माता पिता ने केवल सात वर्ष ही में ब्याह कर दिया था, एक साल तक भी अपने सौभाग्य का सुख न भोग, वर्ष के अन्दर ही विधवा हो गई। वह वालिका बिलकुल बेहोश थी। जब उसका पति मरा, तो उसके सास-ससुर आदि सारा कुटुम्ब और ग्रामवासी तो रो-रोकर पृथ्वी को भिगो रहे थे; पर वह कभी तो अपने ससुर के पास और कभी सास के पास जा; उनके आँसुओं को पोंछती थी और कहती कि अम्मा, तुम मत रोओ, हा! हा!! तुम क्यों रोते हो, क्या हुआ? वे सास-ससुर उस लड़की से कुछ बतलाते नहीं थे। जब उसकी क्रिया उन लोगों ने की, तब नहुवार को जिस समय उसको नई जोरिया पहिराई गई, तब वह बालिका प्रसन्न हो सबको जोरिया यानी अपनी लाली चूड़ियाँ दिखलाती फिरती थी। यह उस अबोध वालिका का तमाशा देख-देख और लोगों तथा उसके सास-ससुर का कलेजा फट रहा था और जैसे-जैसे वह इस प्रकार के तमाशे करती थी, वैसे ही उसके सास-ससुर और अधिक रोते थे। आखिर वह अपने ससुरे से फिर अपने घर विदा हो गई। जब वह पंद्रह-सोलह वर्ष की हुई और जैसे-जैसे कुछ समझने लगी वैसे ही उसका शोक बढ़ता गया। जब कभी किसी त्योहार में उसकी भावजें कुछ शृङ्गार कर पूजा-पाठ करने को चलती थीं, तो इसके पहुँच

जाने से बड़ा असगुन मनाया करती थीं और इससे झरखरा-कर क्रोधित हो अपमानजनक शब्दों से इसका तिरस्कार किया करती थीं, जिससे इसको अपार कष्ट हुआ करता था और फिर वह घंटों अपने अश्रुओं के धारा-प्रवाह से पृथ्वी भिगो देती थी और कहती थी कि हे भगवान् ! तेरी बड़ी-बड़ी बाहें हैं, तू जो चाहे सो कर। ऐसे अवसर प्रायः आया करते थे। एक बार नाग-पंचमी आन पड़ी। उस ग्राम की सब स्त्रियाँ तथा इसकी भावजें नीचे से ऊपर तक सज-धज, अपना सारा ज़ेवर पहिन, गोटे-पट्टे के वस्त्र पहिन, पैरों में मेहँदी लगा-लगा, हिंडोला झूलने के अर्थ पहुँचीं। यह बेचारी धूल-धूसित शिर के बालों में जटा पड़े, एक गज़ी की ओढ़नी ओढ़े, सिन्दूर से मस्तकशून्य उस हिंडोले के पास पहुँची और एकान्त में बैठ गई। उन सब सखियों को पान खाये हुए मस्त झूलती हुई देख अपने मन ही मन यह पश्चात्ताप कर रही थी कि विधाता ! तू चाहे सो कर; नहीं तो आज मैं भी इस भाँति आनन्द न मनाती। हाय, मेरा भी जन्म क्या जन्म है। देखो, एक यह और एक मैं, जो भूतनी की सी शकल बनाये आँखों से पानी बहा रही हूँ। दैव ! क्या तेरे घर इस अभागिनी को ठौर न था। वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि तब तक उसकी भावजों ने दूसरा बाण उसके कलेजे में यह मारा और बोली कि रामपियारी तुम ज़रा आकर झुला दो। वह दीन अनाथ बेमुखवाली रामपियारी आँसुओं से जिसकी आँखें तर थीं, मुसकती हुई उन सखियों सहित भावज को झुलाने लगी। इस समय उसकी भावजों ने यह बारामासी गाना प्रारम्भ किया—

आली री ! उन श्यामसुन्दर बिन कैसे जियब हो।

यह सुन वह दीन और भी अधिक रोने लगी और बोली कि हाय, मैं अब किसे याद करूँ और किसकी कबके लिये आश

लगाऊँ। हा! मेरे श्यामसुन्दर तो उस प्रभू ने हर लिये और ऐसा कह तड़ाक से पृथ्वी पर गिर पड़ी और चिल्ला-चिल्ला यह शब्द कहने लगी। यह देख सारी स्त्रियों का झूलना बंद हो गया और सबकी सबही उस आनन्द को भूल रोने लगीं। सज्जनो, इस दृष्टान्त का परिणाम यही है कि बाल-विवाह का मुख काला करो और अगर विधवाओं के विवाह आप लोग नहीं चाहते, तो कृपाकर रँडुओं के भी विवाह बन्द करो, यही न्याय है।

३६—दहेज से हानि.

कलकत्ता शहर में किसी महाशय के चार लड़कियाँ—प्रेमबाला, स्नेहबाला आदि थीं। उनकी क़ौम में दहेज की बड़ी भारी कठिन प्रथा थी; यहाँ तक कि दो सहस्र दहेज में और लगभग एक-दो सहस्र अन्य खिलाने-पिलाने में भी व्यय होता था। इसके बिना ब्याह होना असम्भव था। अतः उस बेचारे ने, रुपये के लिये बहुत दिन तक इधर-उधर टक्कर मारे; पर जब कहीं कोई उपाय न चला, तब विवश हो एक सेठ के यहाँ अपने रहने की पक्की हवेली चार सहस्र पर गिरों रख रुपया ले आये। जब दोपहर को अपने मकान में वे महाशय भोजन करने गये, तो भोजन करते समय अपनी हवेली देख डकार छोड़कर बड़े ज़ोर-ज़ोर रोने लगे और बोले कि यदि हमारे यह पुत्रियाँ न होतीं, तो हमारे बाप-दादों के हाथ की बनाई हुई यह हवेली, सदैव के रहने के लिये हमारी ज़मीन-जगह आज क्यों बेंचनी पड़ती। यह सुन अपने बाप को रोते हुए और इतना दुखी देख जेठी लड़की प्रेमबाला ने उसी समय अपने चित्त में कुछ प्रण किया और सायंकाल को अपनी माता से कहा कि माताजी मेरे उत्पन्न

होने को धिक्कार है कि जो मेरे उत्पन्न होने के कारण पिताजी की 'मड़ैया' भी बिक जाय। इस लिये पिताजी से कहना कि पुत्री ने कहा है कि पिता, अब आपको मुझ अभागिनी के पीछे कोई कष्ट न उठाना पड़ेगा। माता ने पुत्री के इन वाक्यों का कुछ अर्थ न समझा। आखिर उस पुत्री ने एकान्त में जा हलाहल पान कर स्वर्गधाम को पयान किया। जेठी बहिन को इस भाँति देख अन्यों ने भी यही किया। कहो जिस क़ौम में इस भाँति कन्याओं की हत्या हो उसका कल्याण कैसे हो सकता है। इसलिये लोगो और विशेष कर कान्यकुब्जो! कहो, इस कुप्रथा का मुख काला करोगे वा अभी पूरे कुलीनता में ही रह-कर षटकुल ही बने रहोगे।

४०—नम्बरदारी का पट्टा.

कुछ शृगाल एक ग्राम के निकट एक घूरे पर रोज़ चुगने आया करते थे। कभी-कभी उनको देख उस ग्राम के कुछ कुत्ते पीछा किया करते, तब तो सब शृगाल भयभीत हो कम जाने लगे। एक दिवस वह सब शृगाल ग्राम के निकट घूर पर चुगने गये थे कि इतने में एक शृगाल को उस घूरे में पड़ा हुआ किसी स्त्री का अनवट मिल गया। अनवट के मिल जाने से वह शृगाल उस अनवट को अन्य अपने शृगाल भाइयों को दिखाकर बोला कि देखो, यह हमको नम्बरदारी का पट्टा मिल गया है; सो अब तुम लोग कुत्तों से निर्भय रहो और इस घूरे पर नित्य प्रति चरने आया करो। सब शृगालों ने कहा कि अन-वट आपके पास होने से यह कैसे ज्ञात होगा कि किसके पास

नम्बरदारी की सनद है और कुत्तों के दौड़ने पर हम किससे कहेंगे कि तुम हमको बचाओ। तब उस शृगाल ने जिसने अनवट पाया था कहा कि यह अनवटरूपी सनद तो मेरे गले में बाँध दो और एक डंडा लेकर वह नम्बरदारी का पट्टा मेरी पूँछ में बाँध दो और उसी चिन्ह को देखकर मुझसे कहना। एक दिन घूरे पर चुगने गये और अनायास ही कुत्ते भी आ गये। तब तो सब शृगाल भागे। नम्बरदारजी सबसे आगे भग खड़े हुए। अन्य शृगालों ने यह देखकर कहा कि ओ भाई नम्बरदार! तुम कहाँ भगे जाते हो, तुम्हारे पास तो नम्बरदारी का पट्टा है, फिर क्यों भागते हो। हमको बचाना तो एक ओर रहा, अब तुम्हीं दुम दबाये भगे जाते हो। तब नम्बरदार ने कहा कि भाई क्या करें; कुत्तों का काम प्रबल होता है। इस प्रकार वे सब शृगाल भगकर जा-जा अपनी-अपनी माठियों में घुस गये और जब नम्बरदारजी घुसने लगे, तो नम्बरदारी का पट्टा माठी के मुहरे में अड़ रहा; जिसने नम्बरदारजी को घुसने से रोक लिया। तब अन्य शृगालों ने कुछ शृगालों से कहा कि नम्बरदारजी को घुस आने दो। उन शृगालों ने नम्बरदारजी से कहा कि आओ भाई! तुम भी घुस आओ। तब नम्बरदारजी बोले कि भाई घुस तो हम सब कुछ आवें, पर यह नम्बरदारी का पट्टा हमको घुसने नहीं देता है।

४१—संसार-वृक्ष

एक गमले में एक वृक्ष लगा हुआ है, जिसमें दो फल हैं, तीन उसकी मूल जड़ें हैं, चार उसमें रस हैं, पाँच उसके जानने के प्रकार हैं, छः जिसके स्वभाव तथा सात

परतवाली जिसकी छालें हैं, आठ शाखायें यानी डालें, नव खोखल, दस पत्ते और दो पक्षी उस पर बैठे हुए हैं। उनमें से एक उसके फलों को खाता है, दूसरा साक्षीरूप बिना कुछ खाये ही बैठा रहता है। दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त इस भाँति है; यथा—प्रकृति ही इस वृक्ष का गमला; सुख-दुःख यह दो फल; सत, रज और तम यह तीन मूल हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार रस हैं; त्वचा, नेत्र, कर्ण, जिह्वा और घ्राण यह पाँच प्रकार हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर यह छै स्वभाव हैं; त्वचा चर्मादि सप्त धातु छाल हैं; पञ्च महाभूत मन बुद्धि अहङ्कार आदि आठ शाखायें हैं; मुखादि नौ द्वार; दश प्राण दश पत्ते हैं और जीव और ईश्वर ही दो पक्षी उसके ऊपर विराजमान हैं; उसमें जीव इसके फलों को खाता है और परमात्मा बिना खाये ही साक्षी रूप विराजमान है यथा—

एकायनोऽसौद्विफलस्त्री मूलश्चतू रसः पंचविधिः।
षडात्मा सप्तत्वगष्ट विटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो-ह्यादि वृक्षः॥

४२—अकाट्य ब्रह्मचर्य.

श्रीशुकदेवजी महाराज जब व्यासजी से कुछ अध्ययन कर जङ्गल की ओर चले, तब महाराज व्यासजी उनके पीछे हो लिये। कुछ दूर चलकर एक नदी में कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। जब वहाँ से श्रीशुकदेवजी महाराज जा निकले, तो यद्यपि शुकदेवजी की आयु उस समय ४८ साल की थी; पर तो भी उन स्त्रियों ने श्रीशुकदेवजी को देख परदा न किया। जब पीछे से व्यासजी जा निकले, तो स्त्रियों ने देखकर परदा कर लिया। यथा—

दृष्टानुयान्तमृषिमात्मजमप्यग्नम्
देव्योह्रया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद् वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति
स्त्री पुंभिधा न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः ॥

यह चरित्र देख व्यासजी महाराज खड़े होकर उन स्त्रियों से पूछने लगे कि आप लोगों ने मेरे पुत्र को जो युवावस्था को प्राप्त है, देखकर परदा नहीं किया और मुझे देखकर परदा कर लिया, इसका क्या कारण है। तब उन स्त्रियों ने उत्तर दिया कि आपका पुत्र यद्यपि युवावस्था को प्राप्त है; पर अब तक वह स्त्री-पुरुप भेद नहीं जानता। आपके तो श्रीशुकदेवजी उत्पन्न ही हो चुके हैं! अतः आप उसे जानते हैं; इस कारण परदा कर लिया। धन्य वे पुरुष जो अड़तालीस-अड़तालीस वर्ष पर्यन्त स्त्री-पुरुष भेद नहीं जानते थे। पुनः इन्हीं शुकदेवजी के पीछे जब व्यासजी बहुत पड़े और कहा कि पुत्र लौट आओ, कहाँ जाते हो? तब शुकदेवजी ने कहा कि भगवन्! कोई किसी के मकान गया हो और वह उसे नौ-दश मास पर्यन्त अपनी टट्टी में जिसमें निशि-दिन मल, मूत्र, थूक, खखार भरा रहता है क़ैद रक्खे और फिर जब वह कभी उस टट्टी यानी पाखाने से निकल आये, तो वह उससे कहे कि बेटा कहाँ जाते हो, तो आपही सोचें कि क्या कभी वह उसके पास आयेगा। इसी भाँति आप मेरे पिता हैं; इसलिये आप जाइये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ और मैं अब वन की ओर जाने से नहीं लौट सकता हूँ।

४३–अनोखी सती

राजा भोज के राज्य में वररुचि नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री अत्यन्त ही रूपवती थी। राजा भोज ने उसके रूप की प्रशंसा सुन सद्भाव से उसके दर्शनों की इच्छा की। एक दिवस किसी कार्यवश वररुचि राजा के समीप आया। राजा ने अन्य-अन्य वार्तालाप के पश्चात्, जब ब्राह्मण चलने लगा, तब उसके प्रति कहा कि भाई वररुचि ! हम आपकी धर्मपत्नी के रूप की बड़ी ही प्रबल प्रशंसा कुछ काल से सुन रहे हैं। उसके दर्शनों की हमारी प्रबल उत्कण्ठा हो रही है; सो किसी दिवस आप हमारा निमंत्रण कर इस हीले से हमें उसका दर्शन कराइये। यह सुन ब्राह्मण ने कहा कि महाराज इस बात के लिये विलम्ब ही क्या है। आप कल ही हमारे यहाँ आमंत्रित हैं। आप कृपा करें। राजा ने स्वीकार किया। पुनः वररुचि वहाँ से अपने गृह आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त यथा-तथ्य अपनी धर्मशीला से निवेदन किया। सती ने यह सुनकर दूसरे दिवस प्रातःकाल ही से अपने यहाँ एक महाराज को अतिथि रूप से आगमन जान सब घर लीप-पोत स्वच्छ कर, स्नानादि कर, षट रस व्यञ्जन बनाकर तय्यार किया। पुनः वररुचि ने जानकर राजा से निवेदन कर महाराज को अपने गृह लाकर अपना अहोभाग्य समझा। पुनः भोजन के लिये महाराज से निवेदन किया। महाराज जब भोजन करने को बैठे, तो भोजन महाराज का अभीष्ट ही न था; किन्तु जो अभीष्ट था; वही चौके में बैठे हुए कुछ खाते हुए वारम्बार उस सती की ओर देखते थे। तब वह यशस्विनी आम्र का एक फल अपने हाथ में ले बोली—

रे रे रसादि फलं मुंचति किं रसन्ना
न अस्मत पति परदाररतौ कदाचित् ।
नाहं परेण पुरुषेण रतौ कदाचित्
जानामि भोज नृपति परदार त्यक्त्वा ॥

अर्थ—ऐ आम्र-फल ! तू अब भी रस को छोड़ता है ; तात्पर्य यह है कि तुझ से रस लुप्त क्यों नहीं हो जाता ; क्योंकि न तो मेरे पति ने आज पर्यन्त पर स्त्री की चेष्टा की और न मैं ही पर पुरुष की अभिलाषिनी हूँ और यह भी प्रबल रूप से जानती हूँ कि महात्मा भोज भी परस्त्रीगामी नहीं, फिर यह आज क्या हो रहा है । यह सुन भोज लज्जित हो चले गये ।

४४—अनोखा जती

बुन्देलखण्ड-केसरी महाराज छत्रसाल से ऐसा कौन पुरुष होगा कि जो विज्ञ न हो । यों तो आपके सदाचार और उत्तम स्वभाव की प्रशंसा चारों ओर फैल ही रही थी और आप ही के लिये कविराज भूषण ने कहा है कि—

शिवा को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को ।

यथार्थ में महात्मा छत्रसाल की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । अब यहाँ विशेष वक्तव्य यह है कि महाराज की जैसे गुणों में कीर्ति थी, वैसे ही विधाता ने आपको रूप भी अपूर्व ही दिया था । आप प्रजा के बड़े हितैषी थे और अपने राज्य में निकल प्रजा की आन्तरिक व्यवस्था जानने के अर्थ घूमा करते थे । महाराज के राज्य में एक बेवा भाटिन थी, जिसकी उम्र २० वर्ष के लगभग थी और रूप में भी अद्वितीय थी ।

यह भाटिन एक दिन सायंकाल महाराज को राजमार्ग पर घूमते हुए देख कामासक्त हो विह्वल और मूर्च्छित हो गई। कुछ समय के बाद होश में आई और दूसरे दिवस इसने किसी अपने परिचित के द्वारा महाराज से यह कहला भेजा कि महाराज मुझे अपार कष्ट हो रहा है; सो आप मेरे दुःख को आकर सुनिये। महाराज उसकी प्रार्थना सुन, उसे दुखी जान, तत्काल ही उस भाटिन के गृह जाकर उपस्थित हुए। तब भाटिन ने महाराज को अभिवादन कर और महाराज को आसन दे कुछ और वार्ता करते हुए बड़े चक्कर से दोनों हाथ बाँध यह बोली कि महाराज मैं चाहती हूँ कि आप ही की शकल-सूरत का मेरे एक पुत्र हो। राजा ने यह सुन उसका दुर्भाव समझ लिया; पर यहाँ तो उस भाव की गन्ध भी न थी। अतः राजा ने हाथ जोड़ उससे यह कहा कि शायद तेरी इच्छा के अनुसार कार्य करने पर भी मुझ सरीखा पुत्र न हो; अतः महाराज ने उसके दोनों स्तन पकड़ उसके अञ्चलों को अपने मुख में लगा उसका दूध पी उसके चरणों में गिर पड़े और कहा कि आज से तू मेरी धर्ममाता है और पूज्य है, मुझे आज से तू अपना सच्चा पुत्र समझ और मैं भी बिना तेरी आज्ञा के आज से कोई काम नहीं करूँगा; यहाँ तक कि मैं हर काम के लिये आज से तुमसे पहले आज्ञा ले पीछे माता से आज्ञा लिया करूँगा। यह कह महाराज उसी समय भाटिन माता को अपने यहाँ ले गये और उसके लिये भी एक महल बनवा उसमें उसे रक्खा। उसी दिन से महाराज उसे भाटिन माता, भाटिन माता कहने लगे और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रत्येक कार्य में महाराज प्रथम भाटिन माता की आज्ञा लेकर अपनी माता की आज्ञा लिया करते थे, धन्य छत्रशाल, धन्य!

द्वैध वेधा भ्रमन चक्रे कान्तासु कनकेषु च ।
तासुतेष्वप्य ना शक्त साक्षात् भर्गो नराकृति ॥

४५-कुशिष्य में विद्या की सफलता.

एक गुरुजी ने अपने शिष्य को चाणक्य-नीति पढ़ाई थी। वह शिष्य एक दिवस बैठे-बैठे विचारने लगा कि गुरुजी ने यह पढ़ाया है कि—

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं

इसलिये कुछ उद्योग करना चाहिये ; क्योंकि बैठे-बैठे कैसे पार पड़ेगा। यह सोच आप फावड़ा ले अपनी छत खोदने लगा। जब लोगों ने कहा कि यह क्या करते हो, तब उसने कहा कि उद्योग करता हूँ। गुरुजी ने पढ़ाया है कि—

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं

लोगों ने कहा कि भाई क्या इसीका नाम उद्योग है कि अपनी छत गिरा दे। तब उसने कहा कि क्यों भाई, इसका नाम उद्योग क्यों नहीं। उद्योग तो जो कुछ भी किया जाय, सभी काम को उद्योग कहेंगे। लोगों ने यह समझा कि यह मूर्ख है, जाने दो। इसके मुख कौन लगे। उसे दूसरे दिन यह पाठ याद आया कि—

ऋणकर्ता पिता शत्रुः

उसके पिता बहुत ही दीन थे ; अतः बेचारों को दीनता के कारण तथा प्राप्ति न्यून होने से गृहस्थी में कुछ आवश्यकतायें पड़ जाने से ऋण हो गया था ; इसलिये वे ऋणी थे। तब तक उस

मूर्ख शिष्य ने उक्त वाक्य सोच अपने पिता को मार डाला। तीसरे दिन उसे यह याद आया कि—

भार्य्या रूपवती शत्रुः

उसकी भार्य्या महान् रूपवती थी; अतः घर में जा उसने अपनी स्त्री की नाक काट डाली। इसीलिये कभी कुशिष्य और दुष्ट तथा उल्टी बुद्धिवाले मूर्ख को विद्या नहीं पढ़ानी चाहिये।

४६—संस्कृत शब्दों की विलक्षणता.

संस्कृत भाषा में 'धातूनाम् अनेकार्थत्वात्' इस वाक्य के अनुसार एक-एक शब्द के कितने ही अर्थ होते हैं। उन शब्दों को प्रसंग संगति के अनुसार समझना और अर्थ करना यही पांडित्य है; परन्तु जो मूढ़ प्रसंग को न समझ संगति के साथ अर्थ नहीं करता, वह पढ़ा-पढ़ाया मूर्ख है; इसीलिये तो प्रायः अन्य मतावलम्बियों तथा पण्डितों को भी संस्कृत-ग्रन्थों के अर्थ में कठिनता आन पड़ती है। इसके लिये हम एक दृष्टान्त आप लोगों की सेवा में उपस्थित करते हैं। यथा—एक बार सत्यभामा श्रीकृष्णजी की धर्मपत्नी गृह के भीतर थीं और योगिराज श्रीकृष्णजी ने कहीं बाहर से आ किवाड़ खटखटाये, तब सत्यभामाजी ने कहा कि—

अंगुल्याकः कपाटं प्रहरति कुटिलो.

कौन कुटिल अंगुलियों से किवाड़ों को खटखटा रहा है; तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि 'माधवः'। यह सुन सत्यभामाजी ने कहा कि 'माधवः किं वसन्तो' क्योंकि 'मधु अस्ति यस्मिन् इति माधवः' मधु हो जिसके विषे वह माधव कहावे; सो चैत्र

और बैसाख में मधु उत्पन्न होता है; इसीलिये उसको वसन्त कहते हैं। बस इस कारण वसन्त ऋतु को माधव कहते हैं; सो क्या आप वसन्त हैं। तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि 'नाहं चक्री', मैं वसन्त नहीं; किन्तु चक्री यानी सुदर्शन चक्र का धारण करने-वाला हूँ। तब सत्यभामाजी कहती हैं कि 'किं कुलालो' क्या कोई कुलाल है। यह सुन श्रीकृष्णजी बोले—'न धरणिधरः' हम इसके अनुसार धरणिधर हैं। तब सत्यभामाजी कहती हैं कि 'किं द्विजिह्वः फणीन्द्र' क्या आप शेषनाग हैं। तब श्रीकृष्णजी बोले कि 'नाहं घोराभिमर्दी' मैं शेषनाग नहीं वरन् कालियसर्प का मर्दन करनेवाला हूँ। तब सत्यभामाजी ने कहा कि 'किमुत खगपतिः' क्या तुम गरुड़ हो। यह सुन श्रीकृष्णजी ने कहा कि 'नो हरिः' मैं खगपति नहीं; बल्कि हरि हूँ। तब सत्यभामा ने कहा कि 'हरिः किं कपीन्द्रः' इस प्रकार सत्यभामा ने प्रत्येक वचन से श्रीकृष्णजी को जीत लिया। बस आपने अब समझ लिया होगा कि संस्कृत भाषा के सामने कोई भाषा नहीं।

४७—बकोदर.

आजकल जहाँ देखो वहाँ व्यापार और प्राप्ति के सम्मुख धर्म-कर्म का कहीं नाम-निशान नहीं; बल्कि जिस दूकानदार या जिस व्यापारी के पास जाओ वही अगर एक आने की वस्तु है, तो प्रथम आठ आने मूल्य कहेगा और फिर वही एक आने में देगा। कानपुर में क्या तमाम शहरों में, क्या सराफ़ी की दूकानों पर, क्या ठठराही, क्या बजाज़, क्या बनिये; सभी दस-बारह गुना वस्तुओं का मूल्य कहते हैं। उस समय वैद्य, हकीम, पण्डित

ज्योतिषी आदि किसी को भी धर्म-कर्म का किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं रहता कि हमारे यहाँ धर्मशास्त्र कितनी नफ़ा और मुनाफ़ा खाने की आज्ञा देता है और हम क्या कर रहे हैं। इसके लिये हम आपको एक दृष्टान्त सुनाते हैं—

एक महापुरुष उक्त कथन के अनुसार अपनी प्राप्ति में किंचित् भी धर्माधर्म का स्मरण नहीं रखते थे, जब वह धेले की वस्तु दे चार-चार रुपया ले लिया करते थे, तब उनसे पड़ोसी कहते थे कि यार परमेश्वर को तो डरा करो। इस नफ़ा के अतिरिक्त कोई दुराचार न था; जो आप में न हो। आप चोरी, छिनाला, जुआ, हिंसा, झूठ आदि कुकर्मों में निशि-दिन फँसे रहते थे; पर विप्पन्न इतने थे कि रंडी, भँडुआ, भाँड़, जुआरी, कसाई, कोई ऐसा नहीं बचता था कि जिसके आप हाथ न लगाते हों। इस प्रकार आप बहुत विशेष मालदार भी थे और एक ओर रात में रंडीबाजी, दूसरी ओर प्रातःकाल गङ्गास्नान; एक ओर जप, तो दूसरी ओर डाका, चोरी और झूठ; फिर ऐश और इशरत से यदि कुछ बच जाता था, तो कहने-सुनने को सदाव्रत, पुण्यदान आदि भी आप करते थे। तब एक लोहार जिसकी कि पास ही दूकान थी उस महाराज से बोला कि—

निहाई की चोरी करें, करें सुई का दान।
ऊँचे चढ़कर देखहीं, केतिक दूरि बेवान॥

४८—जप

एक पिता के कई बेटे थे; साथ ही वह इतना मालदार था कि उसके पास किसी वस्तु की कमी न थी। आख़िर जब वह

बुड्ढा हुआ, तो एक दिन अपने सब लड़कों को एकत्रित कर बोला कि भाई ! कहो, यह रुपया कौन लेगा । तब उनमें से एक जो बड़ा ही चतुर था बोला कि हम ; पुनः पिता बोला कि यह सोना कौन लेगा, तो वही लड़का फिर बोला कि हम ; फिर पिता ने कहा यह ज़मींदारी कौन लेगा, उसने कहा हम ; पुनः पिता ने कहा कि हमारी सेवा कौन करेगा ; तब बोले कि अब बार-बार हमीं बोलें ; क्या अबकी कोई और न बोलेगा ।

सज्जनो ! यह हुआ दृष्टान्त ; अब इसका दार्ष्टान्त इस भाँति है कि परमेश्वर पिता के हम सब सहस्रों बेटे हैं । उनमें से कोई कहता है कि पिता हमको रुपया दो ; कोई सोना ; कोई चाँदी ; कोई ज़मींदारी ; कई पुत्र-पौत्र माँगने के लिये तो अनेकों बार बड़े-बड़े राजा-महाराजा, बादशाह भी प्रार्थना किया करते हैं ; पर उसी परमेश्वर के जप के लिये पण्डितों को नौकर रख जप और सपिंडी कराया करते हैं । इन बुद्धिशून्यों से कहो कि तुम अपने बदले खाने, पीने, पहिरने, सोने, आराम करने, सैर करने आदिकों के बदले पण्डित रखकर क्यों नहीं उनके द्वारा खा, पी, पहिन, पाखाना, पेशाब, पीड़ा आदि भोगों से निबट लेते हो । तब शायद यही उत्तर देंगे कि उनके खाने से हमारा पेट नहीं भर सकता । अपने पीड़ा उत्पन्न अपने ही को भोगना पड़ती है ; फिर तुम्हारे बदले कोई जप, पाठ, पूजा करने से तुमको कैसे फल मिल जावेगा । देखो वैशेषिक शास्त्र में महात्मा कणादजी लिखते हैं कि:—

आत्मान्तर गुणानामात्मान्तर कारणत्वात्.

एक आत्मा के गुण दूसरी आत्मा में कारण नहीं हो सकते । उस आत्मा ही का गुण प्रयत्नरूप कर्म है, वह एक का किया दूसरा नहीं भोग सकता ।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमित संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥

४६--अहोवलजी शास्त्री

सुनने में आता है कि काशीजी में अपने समय के अद्वितीय पंडित श्रीमान् अहोवल शास्त्रीजी थे। आपकी गति किसी शास्त्र में रुकती नहीं थी। आपका अभ्यास व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, वेदान्तादि प्रायः सभी विषयों में था; किसी प्रकार का पाठ पढ़नेवाला विद्यार्थी आपकी सेवा से लौटकर नहीं आता था। इतना ही नहीं; किन्तु आपके पढ़ाये विद्यार्थी भी असाधारण विद्वान् थे। उक्त शास्त्रीजी विशेष निस्पृह होने के कारण दीन थे; इस कारण आपके ऊपर एक बार ऐसा समय आ गया कि आप ७५) के ऋणी हो गये। इस ऋण की चिन्ता आपको बहुत विशेष रहा करती थी। रियासत हतुआ के महाराज को भी पण्डितों का बहुत बड़ा शौक़ रहता था; अतः आपने कुछ पण्डितों को इसलिये नियत कर रक्खा था कि वे वहाँ के विद्यार्थियों को ढूँढ-ढूँढ प्रश्न किया करते थे और विद्यार्थियों के बतला देने पर उनको एक रुपया प्रश्न दिया जाता था। यह बात अहोवलजी ने सुनी। रियासत हतुआ के महाराज और वहाँ के पण्डित भी सब महाराज अहोवलजी का नाम पूर्ण रूप से जानते थे और उनके दर्शनों के इच्छुक थे। यह चाहते थे कि शास्त्रीजी हमारे यहाँ कृपा करें; पर शास्त्रीजी कहीं जाते-आते नहीं थे; परन्तु अपने ऋण के कारण रुपया प्रश्न की बात सुनकर उक्त शास्त्रीजी विद्यार्थी बन उस राज्य में पधारे। विद्या-

र्थियों के साथ जा, पूछने पर यह उत्तर दिया कि हम भी काशी में रहते हैं और विद्यार्थी ही हैं। उन्होंने वहाँ के राजा से कहा कि यदि ७५ प्रश्न हमसे एक साथ यानी एक के बाद दूसरा सिलसिलेवार किया जाय, तो हम उत्तर देंगे; अन्यथा एक-आध प्रश्न का उत्तर हम नहीं दे सकते। यह सुन राजा ने स्वीकार किया और अपने यहाँ के पण्डितों को यह आज्ञा दी कि इस विद्यार्थी से ७५ प्रश्न एक के बाद दूसरा लगातार कर लिया जाय। पण्डितों ने ७५ प्रश्न के इकट्ठे की वार्ता सुन विद्यार्थी को कुछ योग्य जान कठिन से कठिन प्रश्न हर विषय के किये; पर वहाँ क्या था। वहाँ तो शास्त्रीजी समुद्र थे। पचहत्तरों प्रश्नों के उत्तर दे ७५ मुद्रा ले जब चलने लगे, तब सब पंडित चकित हुए और राजा ने भी कहा कि इस विद्यार्थी से एक-आध प्रश्न और करो और कह दो कि अब तुमको पाँच रुपया प्रश्न दिया जायगा। तब अहोवलजी ने उत्तर दिया कि अब पाँच रुपया प्रश्न तो क्या यदि सम्पूर्ण राज्य भी दे दिया जाय, तो मैं उत्तर देनेवाला नहीं। ऐसा कह वे चले आये। पश्चात् उनके एक शिष्य ने जा वहाँ के पण्डितों से शास्त्रार्थ कर वहाँ के पण्डितों को परास्त कर कहा कि आप लोग पंडित हैं। यहाँ पर हमारे गुरु अहोवल शास्त्रीजी आये, विद्यार्थी बन आपके ७५ प्रश्नों का उत्तर दिया और आप लोगों ने बड़े-बड़े कठिन प्रश्न किये और फिर भी यह न समझ पाया कि यह विद्यार्थी हैं या पण्डित। यह सुन वहाँ के महाराज ने बड़ा ही पश्चात्ताप किया और फिर उक्त शास्त्रीजी के बुलाने का बड़ा प्रयत्न किया; पर शास्त्रीजी न गये।

५०—पण्डित गदाधर भट्ट.

यह पण्डितजी भी काशीजी के एक विद्वानों में से थे। आपका समय दिन-रात विचार में जाता था। कोई समय ऐसा न था कि जिसमें आप कुछ न कुछ सोचते न रहते हों। आपमें सबसे अधिक एक त्याग का गुण बड़ा ही प्रसिद्ध था। आपको लाखों रुपया राजों-महाराजों ने देना चाहा; पर आप उनके यहाँ न गये। दीनता तो आपके गले का भूषण थी और यह इस श्लोक के अनुसार कि—

दारिद्र भोक्त्वं परमं विवेकि गुणाधिके.

प्राय: पण्डितों ही के साथ रहती है; अत: आपकी स्त्री ने कहा कि आप एक-एक पैसा को हैरान होते हैं और देखिये अमुक राजा ने बुलाया था; आप वहाँ जाते, तो यह सारा दु:ख मिट जाता। जब स्त्री के मारे शास्त्रीजी घर में नहीं बैठने पाये, तो विवश हो वह उस राजा के यहाँ चल पड़े; मार्ग में एक नदी आन पड़ी। आप एक पुस्तक पढ़ रहे थे; अत: नदी देख उसके किनारे पर बैठ गये और मल्लाह से कहा कि भय्या, मुझे उतार दे। उसने कहा कि बैठिये, और मुसाफिर आ जायँ; फिर मैं आपको भी उतार दूँगा। यह सुन शास्त्रीजी चुप हो गये और बहुत समय तक बैठे रहे। तब दुबारा फिर मल्लाह से उतारने के लिये कहा। मल्लाह ने कहा कि आपको अकेले कैसे उतार दूँ; जब तक कि मेरी नाव पूरी न हो जाय और मेरा पेट भर न जाय; तब शास्त्रीजी ने कहा कि ऐसी तुझे पेट की परवाह है, तो फिर अगर कोई एक-आध मुसाफिर आता होगा तो बिचारा एक वा दो-दो दिवस तक यों ही पड़ा रहता होगा। तब उसने कहा कि पड़े ही रहते हैं और मुझे तो महाराज परवाह है ही। मैं

क्या पं० गदाधर भट्ट हूँ कि जो लाखों मिले ; पर कुछ भी परवाह नहीं। तब तो शास्त्रीजी ने पूछा कि तू क्या पण्डित गदाधर भट्ट को जानता है ? तब उसने उत्तर दिया कि महाराज ! मैं पहचानता तो नहीं ; पर इस समय कौन पुरुष संसार में होगा कि जो पण्डित गदाधर भट्ट को न जानता हो। पण्डित गदाधरजी अपनी इस ख्याति को सुन वहीं से लौट आये और जन्म दरिद्रता में ही व्यतीत किया और कहा कि इस ख्याति को अब रुपये के पीछे न बेचूँगा। धन्य ब्रह्म-कुल-भूषण, आप सरीखों से ही पृथ्वी ठहरी थी।

५१—अयुक्त जमात और ईर्ष्या

एक बार राजा इन्द्र के यहाँ एक कोयल पहुँची और उसने इन्द्र महाराज को अपना गाना छेड़ पञ्चमालाप कर अत्यन्त प्रसन्न किया ; यहाँ तक कि महाराज इन्द्र ने उसे एक हार बड़ा ही बेशक़ीमती दे दिया। अन्त में जब वह उस हार को लिये आ रही थी, तब मार्ग में काकजी मिल गये और उससे सब वृत्तान्त पूछा। तब उसने सब यथार्थ समाचार कह सुनाया। यह सुन आपने भी इन्द्र महाराज के यहाँ जाने की तैयारी की और वहाँ पहुँचकर महाराज इन्द्र से बोले कि कृपा कर मेरा भी गाना आप सुन लें, तो बड़ी दया हो। महाराज इन्द्र ने कहा सुनाइये ; वहाँ सिवाय काँव-काँव के था ही क्या। तब इन्द्र ने कहा—वाह-वाह, क्या कहना है ; आपका गाना तो अत्यन्त ही सराहनीय है। आपके सामने तो नारद, औतुम्बरि आदि ऋषि भी कोई उपमा नहीं रखते और न मेरे अखाड़े की कोई देव-अप्सराएँ ही समता कर सकती हैं। तब आप बोले कि महाराज अभी तो मैं अकेला

हूँ, जब मेरी पूरी-पूरी जमात हो तब आप उसका गाना सुनिये। तब; इन्द्र ने कहा कि आपकी जमात कौन? तो काकजी बोले—

अहंश्च जम्बुकाश्चैव लम्बग्रीवा खरस्तथा।
दर्दुरा शूकरश्चैव षड़ैते गान तत्परा॥

अर्थ—मैं, शृगाल, उष्ट्र, खर, मेंढक और शूकर, यह सब एकत्रित हों, फिर आप देखें। तब इन्द्र महाराज ने उत्तर दिया कि—

एकेन फटितः स्वर्गः षडभिर्यत्र निरन्तरम्।
धन्य वज्र पृथिवी त्वं येन याति रसातलम्॥

अर्थ—अरे दुष्ट! एक तेरे ही गाने से स्वर्ग के दो टुकड़े हो गये। धन्य पृथ्वी! तू वज्ररूप ही है कि जो इन छः के गान से भी क़ायम है।'

५२—जैसे को तैसा मिल जाता है

एक क्षत्री बड़े ही उत्तम कुल के खानदानी और प्रतिष्ठित पुरुष थे। आपके यहाँ एक बाबा पधारे। बाबाजी ज्योतिष का भी कुछ अभ्यास रखते थे और ठाकुर साहब को ज्योतिष पर विश्वास भी अधिक था। बाबाजी कुँवरजी के यहाँ बहुत काल रहे और उन पर उन्होंने अपना पूरा विश्वास भी जमा लिया था। कुँवरजी के एक दस बरस की बालिका अत्यन्त रूपवती थी। उसे देख इन बाबाजी के हृदय में कुछ अनिष्ट भाव समाया; अतः आपने कुँवरजी से कहा कि यह लड़की आपके यहाँ बड़े ही अनर्थ की मूल है; इसलिये यदि आप अपनी कुशल चाहें, तो इस बालिका को एक बक्स में बन्द कर इस नदी में बहा दीजिये। कुँवरजी ने महात्मा के वाक्य को मानकर ऐसा ही किया। इधर बाबाजी के पास जो उनका शिष्य था, उसे भी अपनी कुटी को

भेज दिया और उस शिष्य से यह कहा कि इस बक्स को पकड़ कुटी में रखना ; पीछे से मैं आता हूँ । शिष्य तत्काल ही चलकर थोड़ी ही दूर पर नदी के किनारे, जहाँ बाबाजी की कुटी थी, पहुँच गया। इतने में जो बक्स यहाँ से छोड़ा गया, वह बक्स इस बालिका के पिता से भी श्रेष्ठ और कुलीन दूसरे क्षत्री के यहाँ जो ऐसे कुलीन थे कि जिस घर में उस पुत्री की शादी भी हो सकती थी नदी के तट पर पहुँचा । आपने उस बक्स को पकड़वा लिया और पुत्री को निकाल उससे सब वृत्तान्त पूछा। पुत्री ने सम्पूर्ण समाचार जैसे का तैसा निवेदन किया। वह राजकुमार पुत्री को अपने घर ले गया और उस बक्स में एक खूब जबरदस्त बन्दर बन्द कराके उसी नदी में छोड़ा दिया। उसने उस बालिका को पुत्री ही की भाँति रख उसका विवाह किया। उधर बाबाजी भी अपनी कुटी पर पहुँच गये ; अपने शिष्यों से उस बक्स को पकड़वा एकान्त के मकान में पहुँचा दिया और शिष्यों से कहा कि मैं इस मकान के अन्दर जाता हूँ । तुम सब लोग कुटी में गाओ-बजाओ और मेरे मकान में चाहे कोई कितना ही चिल्लाये ; पर तुम सब कुछ भी न सुनना । बाबा का तो यह ख्याल था कि बक्स के अन्दर लड़की है, उससे जब मैं बुरी चेष्टा करूँगा, तो वह शोर अवश्य मचायेगी ; पर वहाँ तो बजाय लड़की के बक्स में बन्दर था। बाबाजी डाढ़ी-बाढ़ी रखाये हुए थे ; अतः जब उस मकान में एकान्त जा बाबाजी ने बक्स खोला, तो उससे एक बन्दर निकला। यद्यपि बाबाजी ने भागना चाहा ; पर बन्दर ने बाबा को पकड़ मार नोच डाला। अब बाबाजी बहुत कुछ चिल्लाये ; परन्तु किसीने इसलिये नहीं सुना कि बाबाजी सबके प्रति पहिले ही आदेश कर चुके थे कि तुम कोई कुछ न सुनना । ठीक है—

जो जैसो करनी करै, सो तैसा फल पाय।
लड़की लीन्हीं राज ने, वाबै बन्दर खाय॥

५३—अद्भुत तपस्या

राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थीं—एक का नाम सुनीति और दूसरी का नाम सुरुचि। महारानी सुनीति की कोख से ध्रुव ने जन्म लिया था। एक दिन ध्रुव खेलते हुए राजा उत्तानपाद की गोद में जा बैठे। यह देख सुरुचि ने राजा से कह ध्रुव को गोद से उतरवा दिया। वह इसके अतिरिक्त और भी अनेकों अपमान किया करती थी। ऐसी दशा में उस बालक ध्रुव के हृदय में कुछ ईश्वर-भक्ति उत्पन्न हुई और उसने वन को तैयारी की। तब राजा ने पुत्र के मोह से बहुत कुछ ध्रुव को देना चाहा; यहाँ तक कि राज्य भी दे देने को कहा। तब उस श्रद्धालु बालक ने सोचा कि पहिले तो यह महाराज हमको अथवा हमारी माता को भोजन भी नहीं देते थे; अब जब हमने परमेश्वर का नाम लिया तब तो राज्य प्राप्त होती है और जब उस प्रभू की भक्ति करूँगा, तब न जाने क्या प्राप्त होगा; अतः वह महात्मा किसीके रोके न रुका और वन में जा एकान्त आसन लगा, सन्ध्या-प्राणायाम यम-नियमादि अष्टाङ्ग योग का पालन करता हुआ षट सम्पति और पंचकोश विवेचन का भी आरम्भ किया—वह यह इस प्रकार कि—

त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थ बदराशनः।
आत्म वृत्यानुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हिरिम्॥

अर्थ—तीन-तीन दिन के बाद कैथा और बदरीफल खा-खाकर परमात्मा की भक्ति करता भया।

द्वितीयश्च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भकोदिने ।
तृण पर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्ताऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥

अर्थ—दूसरे मास में छठे-छठे दिन तृण और पत्ते खा-खाकर प्रभू को याद किया। इस भाँति घोर तपस्या की; जिसका फल यह हुआ कि महात्मा ध्रुव को जिस प्रकार वह प्रभू है

एव सर्व गन्धः सर्व रसः सर्व कामः !

अर्थ—यह परमेश्वर सारे गन्धोंवाला, सारे रसोंवाला और सारी कामनाओंवाला है; सो उसकी जो भक्ति करता है, उसको इस कथन के अनुसार कि—

यं यं लोकं मनसा सं विभाति विशुद्ध
सत्वः कामयते यांश्चकामान् ।
तं तं लोकं जायतेतांश्च कामां
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चमेद्भूतिकामः ॥

अर्थ—इस प्रकार मन इच्छित फल सम्पूर्ण उस महात्मा को इसलिये ईश्वर ने प्रदान किये कि—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

अर्थ इसके अनुसार परमात्मा की भक्ति करो; पर इस विचार से पाप न करना कि 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि'।

५४—जान है, तो जहान है

एक सेठजी मैं अपने स्त्री और बाल-बच्चों तथा अपनी बहुत सी सम्पत्ति लिये कहीं देश-देशान्तर को जा रहे थे। इतने में एक बहुत बड़ी नदी आन पड़ी। तब तो सेठजी नाव पर सवार हो

दरिया पार करने लगे। उस समय एक ऐसा भयानक तूफ़ान आया कि जिससे वह नाव डूब गई और मल्लाहों ने तैरकर केवल सेठजी को निकाल पाया; बाक़ी सेठजी के बाल-बच्चों के लिये उन केवटों ने बहुत-कुछ प्रयत्न किया; पर वे किसी को भी न निकाल सके और न कुछ सम्पत्ति ही निकाल सके। तब उन केवटों ने सेठजी से कहा कि सेठजी अब आपके बाल-बच्चे अथवा सम्पत्ति तो हम कुछ भी नहीं निकाल सकते; क्योंकि हमने बड़ा प्रयत्न किया; पर किसीका पता नहीं चलता। तब सेठ ने कहा कि कुछ हरजा नहीं—'जान है तो जहान है'। निदान सेठ ने फिर व्यापार किया, जिससे सेठजी फिर सम्पत्तिशाली हो गये और पुनः विवाह किया कि जिससे सेठजी के फिर बाल-बच्चे उत्पन्न हो गये। तब बोले कि देखो उस समय यदि हम घबड़ाकर प्राण खो देते, तो फिर क्या था और यदि उस समय हमने धैर्य रक्खा, तो आज परमेश्वर ने फिर सब कुछ दे दिया।

५५—तुम्हारी क़ीमत प्रभू के साथ है

समुद्र के पानी की बूँद यद्यपि समुद्र से सूर्य के किरणों द्वारा वायु और बादल के साथ मिल घास पर मोती के सदृश आब यानी चमक को प्राप्त करता है; पर घास पर आने से उसकी अवधि केवल एक क्षणमात्र की रह जाती है और चमक के सिवाय क़ीमत भी उसकी कुछ नहीं होती है; पर समुद्र के साथ वही बिन्दु अथाह और बहुत काल तक अजर और अमर है। बस ठीक इसी भाँति यह जीव सागर रूप परमात्मा से भिन्न हो, प्रकृति-पत्र पर आ यद्यपि चमक उठता है; पर वहाँ चमक के साथ ही उसकी मौत उसके समीप ही बसती है और बिन्दु ही

की भाँति कम क़ीमत हो जाता है ; पर प्रभू के साथ वही अजर, अमर और 'जीवन मुक्तश्च' इस सूत्र के अनुसार सदैव जीवन-मुक्त रहता है।

५६—धूर्तता

एक धुना यानी बेहना साहब बहुत बड़े धनी थे और उन्हीं के परोस में एक नाई साहब रहा करते थे। वेहना साहब धनिक तो थे, पर उस गाँव में कुछ बदमाश उनके पीछे ऐसे पड़े कि जिससे उनकी जान आरी थी। अतः बेहना साहब ने नाऊठाकुर से कहा कि नाऊठाकुर सुनते हो? तब नाऊठाकुर ने कहा कि कहिये, आप क्या कहते हैं? तब बेहना साहब बोले कि चलो इस गाँव से निकलकर कहीं दूसरी जगह ज़मींदारी खरीदें और वहीं रहें। वहाँ अपनी ज़मींदारी में आपको भी कुछ ज़मीन देंगे, सो मजे में जोतना और खाना। नाऊठाकुर ने भी स्वीकार कर लिया। इस भाँति दोनों सम्मति कर बेहना साहब बहुत-कुछ धन ले मै नाऊठाकुर के निकल पड़े। बहुत दूर जाकर बेहना साहब ने एक बहुत बड़ा गाँव ख़रीदा और उसके पहिले एक दिन आपने नाऊठाकुर से कहा कि देखो आजसे आप हमको बेहना न कहना; बल्कि बेहना के स्थान में पठान साहब कहना। तब नाऊठाकुर बोले कि तो आप भी आज से मुझे नाऊठाकुर न कहना; वरन् ठाकुर साहब कहना। यह बात दोनों की तै हो गई। बस उसी दिन से वे दोनों एक दूसरे के प्रति वैसा ही कहने लगे। गाँव भर में बेहना तो पठान साहब प्रसिद्ध हो गये और नाऊठाकुर ठाकुर साहब क.हे जाने लगे। पठान साहब ठाकुर साहब को अपनी पूर्व

प्रतिज्ञा के अनुसार कुछ ज़मीन दे बड़ी कृपा रखने लगे। ठाकुर साहब भी अपने ज़मीन जोतते खाते थे और पठान साहब के दरबार में हाज़िर रहा करते थे। कुछ दिन के बाद बैठक-उठक में कुछ ठाकुर साहब और पठान साहब की खटपटी हो गई, अतः ठाकुर साहब दरबार में न आने लगे। कुछ दिनों के बाद पठान साहब को बहुत बुरा लगा और कहा कि देखो, हमारी ही तो ज़मीन जोते खाये और हमीं से बैर; अतः पठान साहब ने अपने सिपाहियों को यह आज्ञा दी की तुम लोग जाकर आज ठाकुर साहब को पकड़ लाओ। सिपाही आज्ञा के अनुसार ठाकुर साहब को लिवा लाये। बाद दुआ-बंदगी के पठान साहब नाराज़ तो थे ही; अतः ठाकुर साहब से बोले कि सुनते हो ठाकुर साहब !

लोहे कि सेराई शिर घिसना। सरकार का पैसा यों रखना॥

तब तो ठाकुर साहब को बुरा लगा और क्रोधित हो ठाकुर साहब भी बोले कि—

बाँध बाँध धनुही तुन्नुक तां।

यह सुन पठान साहब बोले कि—

गुप्ते गुप्ते गुप रहना। अगली पिछली मत कहना॥

५७—बाबू लोगों की संध्या

एक जज साहब की लड़की बहुत पढ़ी-लिखी थी; अतः आपने अपनी लड़की की शादी एक बी० ए० साहब के साथ की। उन्होंने बहुत कुछ सामान और रुपया-पैसा भी दिया। यह दोनों

हिन्दुस्तानी थे। कुछ समय के बाद जज साहब के दामाद जज साहब के यहाँ आये और जब शाम हुई, तब जज साहब ने अपने कहार से कहा कि सन्ध्या करने के लिये वहीं जहाँ हमारा आसन रोज बिछाता है, वहीं एक आसन और डाल देना; क्योंकि आप भी सन्ध्या करेंगे। कहार ने दोनों आसन बिछा दिये और गिलासों में पानी रख दिया। अब जज साहब और उनके दामाद दोनों ही बराबर बैठ सन्ध्या करने लगे। जज साहब के दामाद को सन्ध्या नहीं आती थी और न उन्होंने कभी की ही थी। बी. ए. तो आप पास थे ही; अतः जब जज साहब ने मार्जन किया, तब आपने भी किया; जब उन्होंने शिखा बाँधी, तब आपने भी बाँधी और जब उन्होंने आचमन, इन्द्रिय-स्पर्श तथा मार्जन किया, तो आप भी उनके पीछे देख-देख सब क्रिया करते गये। जज साहब आखिर तो जज ही थे। उन जामात्र साहब के इस प्रकार पीछे-पीछे क्रिया करने से समझ गये कि इनको सन्ध्या ही नहीं आती; अतः जज साहब ने जोर-जोर मंत्रों का पढ़ना आरंभ किया। तब इन्होंने जोर-जोर मंत्र न पढ़े; वरन् होंठ बुदबुदाते रहे। अब तो जज साहब को और भी निश्चय हो गया; परन्तु जज साहब ने इससे अधिक निश्चय करने के लिये जब सन्ध्या कर चुके तब उठकर दाहिने हाथ से आसन उठा और अपने शिर के चारों ओर घुमा फिर बिछाकर बैठ गये। यह देख उनके जामात्र साहब ने भी उसी प्रकार दाहिने हाथ से आसन उठा अपने शिर के चारों ओर घुमाकर बैठ गये। तब तो जज साहब और उनके सेवक सब हँसने लगे। बस ठीक इसी प्रकार आज-कल हमारे बहुत से बी. ए. और एम. ए. की सन्ध्या होती है। मैंने देखा है कि बीसियों को तो शुद्ध मंत्र भी नहीं उच्चारण कर आते और बीसों करते ही नहीं। कृपाकर इस दुर्दशा को मिटाइये।

५८—तहज़ीब.

एक जज साहब एक बार अपनी टम-टम पर जा रहे थे और साईस उनकी टम-टम के पीछे हो खड़ा था। साईस यद्यपि साईस था; पर बुद्धिमान था। उस दम उसने मार्ग में क्या देखा कि साधारण लोग तो जज साहब को एक हाथ से सलाम करते हैं और जज साहब घोड़े की बाग छोड़ दोनों हाथों से सलाम करते थे। साईस ने पूछा कि हुजूर, गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, मैं हुजूर से यह पूछना चाहता हूँ कि हुजूर को आम लोग एक हाथ से सलाम करते हैं; पर हुजूर दोनों हाथ से सलाम करते हैं। तब जज साहब ने जवाब दिया कि यदि मैं भी एक हाथ से सलाम करूँ, तो मैं भी वैसा ही न हो जाऊँ और मुझमें उनमें अन्तर ही क्या रहे। उनमें जितनी योग्यता है, उतना ही वह अदब करते हैं और मुझमें जितनी योग्यता है, उतना ही मैं भी करता हूँ। इस दृष्टान्त पर हमारे उन भाइयों को ध्यान देना चाहिये, जो तुच्छ से तुच्छ अधिकार पा अथवा साधारण वकील, बैरिस्टर, रईस होकर प्रजा के सलाम या अभिवादन करने पर उनकी ओर देखा भी नहीं करते हैं।

५९—लालबुझक्कड़

एक बार एक जगह एक हाथी मर गया था और उस ग्राम-वासियों ने हाथी कभी भी देखा नहीं था; अतः सब ग्रामवासी एकत्र हो विचार करने लगे कि यह कौन चीज़ है। तब ग्राम-वासियों में से किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। निदान राय यह ठहरी कि लालबुझक्कड़ को बुलाओ, तो इसका निश्चय हो कि यह कौन चीज़ है। ऐसा निश्चित कर लालबुझक्कड़

बुलाये गये और उनसे पूछा गया कि भाई साहब ! यह कौनसी चीज़ है, बतलाइये। तब लालबुझक्कड़ बोले कि—

जानै बात बुझक्कड़, और न जानै कोय।
रात भरे की जगी अँधेरिया, रही इकट्ठी सोय॥

६०—इज्ज़त अपने हाथ है.

एक गाँव में दो रईस रहा करते थे। उनमें से एक तो बड़े मालदार—यहाँ तक कि दस-बीस मौजे और करोड़ों के सुभीते-वाले थे और दूसरे साहब के पास किसी गाँव में सिर्फ़ कुछ हिस्सा था। बड़े मालदार साहब की सदैव यह चेष्टा रहती थी कि लोग पहिले हमसे दुआ-बंदगी, सलाम करें; इसलिये आप गाल फुलाये बैठे रहते थे। कभी अपने आप किसी दूसरे से साष्टांग प्रणाम नहीं किया करते थे और न बैठने-उठने में ही आइये, पधारिये कहते थे; बल्कि जहाँ बैठे होते थे वहीं कुर्सी या आराम-कुर्सी पर बैठे रहते थे। आस-पास तिपाइयाँ पड़ी रहती थीं, उन पर आनेवाले की तबीयत चाहे तो बैठ जाय और तबीयत चाहे चला जाय। इतना ही नहीं; वरन् दो-चार आदमियों के बैठे रहने पर भी घर से मिठाई मँगवाई या कोई और वस्तु आई, तो और किसी से पूछना गाछना नहीं, आपही एकाएकी खाने लगते थे; यही दशा आपकी पान-पत्ते और इलायची में रहती थी; पास के बैठनेवाले मुँह ताका करते थे और आप पान, इलायची मुँह में भरे बड़ी शौक़ से बातचीत किया करते। वही दशा इनकी अपनी रियासत से बाहर जाने पर भी साथ के आदमियों से तथा अन्यों से भी रहा करती थी।

दूसरे साहब जो इनके सामने कुछ भी नहीं थे और केवल एक गाँव के कुछ हिस्सेदार ही थे, उनकी यह दशा थी कि सबसे प्रथम अभिवादन करते; अपनी शक्ति भर कभी दूसरे को यह मौक़ा न देते थे कि वह प्रथम अभिवादन करे, यों धोखे से चाहे कोई प्रथम भले ही कर ले; देखते ही दूसरे के उठ पड़ते थे और अपने से सर्वथा दूसरे को उच्च आसन दिया करते थे; पर फिर भी वह लोग जो जैसा होता था वैसा ही बैठा करते थे। इसके अतिरिक्त कभी किसी वस्तु की एकाएकी माँगने की चेष्टा नहीं करते थे; किन्तु यह औरों को खिला-पिला देते थे और आप वैसे ही रह जाते थे। दूसरे के दुःख पर जहाँ वह किसी के दरवाज़े नहीं जाते थे, वहाँ यह बिना बुलाये ही दुःखी के दरवाज़े प्रत्येक दुःखी-सुखी के दुःख-सुख में शामिल हुआ करते थे। परिणाम इसका यह निकला कि उन बड़े मालदार की माँ मर गई और उनके यहाँ एक आदमी भी न पहुँचा; विशेषकर उनकी रियाया भी न गई; केवल नौकर साथ और आप थे और इस एक ग्राम के हिस्सेवाली की स्त्री के मरने के समय पाँच सौ आदमी साथ में था। केवल एक काम यही नहीं; बल्कि उस एक ग्राम के हिस्सेवाले के यहाँ यदि कुछ भी काम होता था, तो सैकड़ों आदमी जमा हो जाते थे और इनके यहाँ कोई झाँकने भी न जाते थे। उनकी लोग सर्वथा सर्व प्रकार से इज्ज़त किया करते थे और इनको देखकर उठते भी न थे। निदान इन्होंने अपनी यह बेइज्ज़ती देख सैकड़ों पर झूठे मुक़दमे, तहसील-वसूल में सख्ती आदि हर प्रकार के प्रपञ्च रचे; परन्तु लोगों ने इनकी इज्ज़त न की। बस लोगो! अगर तुम अपनी इज्ज़त कराना चाहते हो, तो पहिले दूसरों की इज्ज़त करना शुरू करो, क्योंकि दुनिया मिस्ल आइने के है। यथा, आइने के सामने जैसी शक्ल ले जाओ, वैसे ही उसमें से

आपकी नज़र आयेगी। बस ठीक दुनिया के साथ जैसे बर्ताव आप करेंगे वैसे आपके साथ और लोग करेंगे। यथा—

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणांच चतुर्विधम्।
प्रसादयति ये लोकोन्त लोको न प्रसीदति॥

६१—बड़ा कौन

एक बार उर्द की दाल और बड़ों में झगड़ा हुआ। दाल कहती थी कि मैं बड़ी और बड़े कहते थे कि हम बड़े। यह विवाद हो ही रहा था कि इतने में बड़ों ने दाल से प्रश्न किया कि तुम कैसे बड़ी हो। तुम्हारे पास बड़े होने का क्या प्रमाण है। यह सुन दाल बोली कि मेरे पास तुम्हारे लिये सिर्फ यह सबूत है कि तुम मुझसे पैदा हो और मैं न होती, तो तुम कहाँ से आते। तब बड़ों ने कहा कि यह ठीक है; पर तुम यह बताओ कि यदि ऐसा है, तो तुम्हारा नाम लोगों ने दाल क्यों रक्खा; बड़ा क्यों न रक्खा और तुमको बड़ा क्यों नहीं कहा। यों तो फिर तुमसे भी उर्द बड़े; पर सुनो—यह नहीं; बल्कि बात यह है कि तुमने तो सिर्फ एक ही दुःख सहा, यानी दली गई; इस लिये दाल हुई और हमारी कथा सुनो कि प्रथम लोगों ने हमको दाल की अवस्था से लेकर यानी दाल को लेकर पानी में गला हमारी खाल खींची; पर इस पर भी उनको तृप्ति न हुई, तब उस धुली दाल को लेकर सिलबट्टे पर रख खूब ही पीसा; परन्तु इसपर भी उनका दिल न भरा, तब उनमें नमक भरा। इतने पर भी अभी हमारा पीछा न छोड़ा; मार-मार थप्पड़ों से पोया, इसपर भी उन्हें सब्र न हुआ, पुनः चूल्हे पर कढ़ाही रख

तेल को खूब गरम किया और उस गरम कड़ाही में मुझे छोड़ दिया। इतनी तकलीफें सहने के बाद मैं बड़ा बना हूँ और तब लोगों ने मुझे बड़ा कहा। बस इसी भाँति जो पुरुष धर्म के लिये या परोपकार के लिये तकलीफ उठाता है, वही बड़ा बनता है।

६२–भुजपुरिया.

एक भुजपुरिया साहब अपने हाथ में एक रुपया बहुत देर तक दबाये रहे। हाथ पसीजने से रुपये पर पानी आ गया; तब आप मुट्ठी खोल और रुपये पर पानी देख रुपये से बोले कि भय्यन! काहे को रोवत हौ, मोर मुड़िया चाहे फूट जाय; पर तुम्हारि मुड़िया नाइ फूटन पैहै।

६३–सेर का सवा सेर.

एक सौदागर की लड़की बड़ी तेज़, तर्रार और इतनी गु़स्सेबाज़ थी कि उसके घर में उसके मारे कोई निभने नहीं पाता था। माँ, बाप और भाइयों के नाक में दम था; कहीं इसको पटक, कहीं उसको पटक, माता के किसी काम के कहने पर वस्तुओं को पटक देती, कभी रोटी करने में दाल किसी के आगे और रोटी किसी के आगे पटक देती; यहाँ तक कि माँ-बाप बिचारे हैरान थे कि हम इसकी शादी कहाँ करेंगे। वह अपने गु़स्से से बहुत दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गई थी, जिस के कारण उसकी शादी कोई स्वीकार नहीं करता था। एक फ़ौजी सवार था। यह भी बड़े उच्च ख़ानदान का था। इसकी भी शादी

नहीं हुई थी। इन्होंने भी उस लड़की की सारी व्यवस्था सुन ली थी; पर कुछ कचपचाते थे। एक दिन आप भोजन बना रहे थे। दाल के ऊपर जो कटोरी आपने मूँदी थी भाप के कारण खटखटा रही थी। तब आपने एक लोटा ठंढे जल का भर के उस कटोरी पर रख दिया। अब उसका खटखटाना बंद हो गया। अब तो इसे पता लग गया कि सेर का सवा सेर होने पर तेज़ी मिट जाती है। अतः, इसने उस लड़की की शादी स्वीकार की और बड़ी धूम-धाम से विवाह कर जब विदा कराके चले, तो मार्ग में ही पीछे जो सूप बँधा हुआ था, हवा के कारण खटखटा रहा था। सवार ने मियान से तलवार निकाल एक ऐसा हाथ सूप में मारा कि सूप के दो पल्ले हो गये और कहा कि खटपट खटपट लगाये हुए है; हमको जो पसन्द नहीं वही साला यहीं करता है। इसके अलावा अपने नौकरों को भी मार्ग में बिना कारण ही किसी को गाली, किसी को मार; यह सब चरित्र देख सौदागर की लड़की के होश-हवास बिलकुल ठीक हो गये; पर सवार ने घर में भी एक-दो मास तक अपना बर्ताव यही रक्खा। अब तो सौदागर की लड़की बड़ी सीधी चाल से चलती और पति की बड़ी सेवा किया करती। एक दिन बड़े प्रेम से अपने पति से बोली कि क्या आप सिड़ी तो नहीं हैं, जो हमेशा किसी को गाली, किसी को मार और सबसे भरखरा कर बोलते हैं। तब सवार ने कहा कि नहीं, हम सिड़ी नहीं; किन्तु हमने यह सब व्यवहार तुम्हारा गुस्सा छोड़ाने के लिये कर रक्खा था। अब हमने जान लिया कि तुम सीधी हो गई हो; अतः आज से अब तुमको यह कुछ व्यवहार नजर न आयेगा।

६४-शक में खराबी.

एक पुरुष की स्त्री बड़ी ही चतुर और सदाचारिणी थी। वह नित्य की भाँति कुएँ पर पानी भरने के लिये गई थी कि इतने में चार बटोही मार्ग के श्रम से अत्यन्त ही तृषित उस कुएँ पर आ गये। इस स्त्री से उन लोगों ने कहा कि मय्या! हम लोगों को बड़े जोर से प्यास लग रही है; सो दया कर हमको थोड़ा थोड़ा पानी पिला दो। उस स्त्री ने उनका मुख मलीन देख कहा कि आप लोग ठहरिये, मैं घर से कुछ ले आऊँ; फिर आप लोगों को पानी पिलाऊँ; क्योंकि खाली पेट पानी नुक़सान करेगा। यह कह वह अपने घर से चार लड्डू ला बोली कि आइये आप लोग पानी पीजिये। यह कह पानी भरने लगी और भर कर उनसे पूछा कि आप कहाँ रहते हो, आपका क्या नाम है। उन्होंने रहने का ग्रामादि बताया। उनमें से एक बोला कि मेरा नाम तो मुसाफ़िर है। तब इस स्त्री ने कहा कि मुसाफ़िर तो दुनिया में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये। दूसरे से पूछा कि आपका क्या नाम है; तब उसने कहा कि मेरा नाम तो ग़रीब है। तब इसने कहा कि ग़रीब तो दुनिया में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये। पुनः तीसरे से पूछा कि आपका क्या नाम है; तब इसने कहा कि मेरा नाम तो गुण्डा है। तब इसने कहा कि गुण्डे तो दुनिया में दो ही हैं; तुम तीसरे गुण्डे कहाँ से आये। फिर इसने चौथे से पूछा कि आपका नाम क्या है। तब इसने उत्तर दिया कि मेरा नाम तो लुच्चा है; तब फिर स्त्री ने कहा कि लुच्चे तो दुनिया में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये। यह बातचीत कर उन चारों को पानी पिला दिया। उन्होंने पियास के मारे इन बातों का उस स्त्री से कुछ भी मतलब न पूछा; पानी पी-पीकर रवाना हो गये। इस बीच में

इस स्त्री के पति से किसीने कह दिया कि आपकी स्त्री बड़ी ही बदमाश है। देखो तो कुएँ पर चार राही आ गये हैं; उनको घर से ले जाकर लड्डू खिलाए हैं और उनसे अठखेलियाँ कर रही है। पति साहब इतने मूर्ख थे कि अपनी स्त्री की इतनी शिकायत सुन, न कुछ सोचा, न समझा, एकाएकी उस ग्राम के राजा के यहाँ जाकर यह फ़रियाद की कि महाराज मेरी स्त्री बड़ी बदमाश है। देखो, कुएँ पर कहीं से चार राही आ गये हैं और उनके साथ वह भग जाने को तय्यार है। यह सुन राजा ने अपने दूत छोड़ उन राहियों को और उस स्त्री को भी पकड़ा मँगाया। जब वह सब राजा के सामने आकर हाज़िर हुए, तब राजा ने उस स्त्री से कहा कि तुम्हारे पति ने हमारे यहाँ फ़रियाद की है कि हमारी स्त्री उन चार राहियों के साथ भागी जाती है और वे राही भगाये लिये जाते हैं; सो क्या मामला है। तब उस स्त्री ने कहा कि मामला यह है कि यह चारों राही प्यासे आये थे। इन्होंने मुझसे कहा कि मय्या! हम प्यासे हैं। मैंने इनसे कहा कि अगर मैं तुम्हें खाली पेट पानी पिलाऊँगी, तो नुक़सान होगा; इसलिये मैंने घर से चार लड्डू ला इन्हें पानी पिलाया और इनसे रहने का पता पूछा और इनके नाम पूछे। इनमें से एक बोला कि मेरा नाम तो मुसाफ़िर है। मैंने कहा कि मुसाफ़िर तो दुनिया में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये? राजा ने कहा कि यह कैसा। स्त्री ने कहा कि सूरज और चाँद यही दो मुसाफ़िर हैं। राजा ने कहा कि ठीक है। पुनः स्त्री बोली कि मैंने दूसरे साहब से पूछा कि आपका नाम क्या है। उन्होंने कहा कि मेरा नाम तो ग़रीब है। मैंने कहा कि ग़रीब तो दुनिया में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये? फिर राजा ने कहा कि यह कैसे। स्त्री ने कहा कि गाय और लड़की, इन दोनों को यानी गाय का स्वामी और लड़की के माँ-बाप चाहे जिसके

हवाले कर दें और फिर जिसके हवाले करें, वह भी गाय को खूँटे में बाँध और लड़की का पति लड़की को अपने घर ले जाकर चाहे खाने-पीने को दे चाहे न दे। इसलिये इन दोनों से और कोई तीसरा ग़रीब नहीं। राजा ने कहा कि ठीक है। पुनः स्त्री ने कहा कि मैंने तीसरे साहब से पूछा कि आपका क्या नाम है। तब उन्होंने कहा कि मेरा नाम तो गुण्डा है। तब मैंने कहा कि गुण्डे तो दुनियाँ में दो ही हैं, तुम तीसरे कहाँ से आये? तब राजा ने कहा कि यह कैसा। स्त्री ने कहा कि एक अन्न और दूसरा पानी; यही दो गुण्डे हैं। अगर यह दो खाने-पीने को न मिलें, तो गुण्डों का सारा गुण्डापन दो दिन में निकल जाये। राजा ने यह भी मान लिया। पुनः स्त्री ने कहा कि मैंने चौथे साहब से पूछा कि आपका नाम क्या है? तब उन्होंने कहा कि मेरा नाम तो लुच्चा है। तब मैंने कहा कि लुच्चे तो दुनिया में दो ही हैं; तुम तीसरे कहाँ से आये। तब राजा ने कहा कि यह कैसे। तब स्त्री ने कहा कि अन्नदाता अब की क़सूर मुआफ़ हो, तो मैं कहूँ। तब राजा ने कहा कि तुम्हारा क़ुसूर मुआफ़ है, कहो। तब स्त्री बोली कि एक लुच्चा तो मेरा पति, जिसने बिला कुछ समझे आपसे आकर फ़रियाद की और दूसरे लुच्चे आप, जिन्होंने मेरे पति के कहने पर बिना कुछ उससे पूछे-गछे मुझे और इन राहियों को इतनी देर हैरान किया। राजा स्त्री का वाक्य मान बड़ा ही लज्जित हुआ और उन सबको छोड़ दिया। बस इसी भाँति बहुत से झूठे शक भी मनुष्यों के दिल में हो जाते हैं और उन झूठे शकों के कारण वे अपने प्यारे और सज्जन स्त्री-पुत्रादिकों को जुदा कर देते हैं; सो बिना पक्की जाँच-पड़ताल के कभी ऐसा न करो।

६५—दमड़ी दान.

एक सेठजी बड़े ही कंजूस थे। आप एक वार गंगा-स्नान करने गये। वहाँ स्नान के बाद गंगापुत्र को आपने एक दमड़ी दान दी, सो भी आपने उधार रक्खी। गंगापुत्र तो उसी समय समझ गया कि जब आपने दमड़ी उधार रक्खी थी; पर गंगापुत्र ने भी यह ठान ली थी कि झूँठे को उसके घर तक पहुँचा देना चाहिये। अतः, सेठजी गंगा-स्नान करके घर आये और गंगापुत्र से कह आये कि तुम जब आना तब अपनी दमड़ी ले जाना। आख़िर कुछ दिन के बाद गंगापुत्र आया, तो सेठजी घर छोड़ दूसरे ग्राम को चले गये। लाचार हो, बेचारा गंगापुत्र लौट गया। पुनः कुछ दिन के बाद गंगापुत्रजी फिर आये। तब घर में होते हुए सेठ ने सेठानी से कहा—कह दो घर में नहीं हैं। इस भाँति गंगा-पुत्र फिर वापिस गया। तिबारा कुछ दिन के पश्चात् गंगापुत्रजी फिर आये। अबकी गंगापुत्र ने निश्चय जान लिया कि सेठजी घर में ही मौजूद हैं। अब तो सेठजी को कोई बहाना न सूझा, तब सेठानी से बोले कि अगर गंगापुत्र मुझे पूँछे, तो कह देना कि सेठजी मर गये। तुम रोने-धोने लगना। मैं साँस साध के लेटता हूँ; फिर गंगापुत्र चाहे मेरा कुछ ही करे; पर तुम कहीं दमड़ी न दे देना। यह कह सेठजी लेट गये। इधर गंगापुत्र ने बुलाया कि सेठानी रोने लगीं कि सेठजी मर गये, जाने क्या हो गया; कल अच्छे थे; पर आज दो दफ़े खाँसी आई और खाँसी के साथ ही दम निकल गया। निदान गंगापुत्र ने कहा कि तुम्हें सेठजी को गंगाजी पर भेजना ही है; सो तुम औरतें ठहरीं, हैरान-परेशान होंगी। लाओ, हम सेठजी को घाट पर लेवाये जायँ। यह कह गंगापुत्र

ने बिमान यानी ठठरी बाँधी और सेठजी को उसपर बाँध घाट को ले चले ; पर सेठजी ने दमड़ी देना स्वीकार न किया। पुनः घाट पर ले जाकर चिता लगाई और सेठ को स्नान कराकर चिता पर लेटाया और जब शिर की ओर गंगापुत्र अग्नि देने लगा, तब भगवान् प्रसन्न हो आकर सेठ से बोले कि सेठजी जो माँगना हो, सो माँगो ; हम आप पर बड़े प्रसन्न हैं। तब तो हाथ जोड़ सेठ ने कहा कि महाराज यदि आप प्रसन्न हैं, तो आप हमारी वही दमड़ी छुटा दीजिये और हम आपसे कुछ नहीं चाहते हैं।

६६—मृत्यु से शिक्षा

महात्मा बुद्ध के पिता एक बहुत बड़े धनिक और राज्याधिकारी भी थे। जिस समय आपके घर में महात्मा बुद्ध उत्पन्न हुए उस समय बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। यह बालक बाल्यावस्था से ही ऐसा होनहार था कि दिनों-दिन इसके चरित्रों से लोग चकित थे। पढ़ने-लिखने में भी यह ऐसा होशियार था कि इसकी चर्चा चारों ओर फैल गयी। महात्मा बुद्ध जब कुछ बड़े हुए, तो इनमें एक खास बात यह थी कि बाल्यावस्था से ही इनकी वृत्ति वैराग्य की ओर तो थी ही, निदान परिणाम यह हुआ कि एक दिन एक बुढ़िया आपकी नजर में ऐसी आई कि जिसकी कमर बहुत कुछ झुक गई थी और एक लकड़ी लिये नीचे को शिर किये जा रही थी। आपने सेवकों से पूछा कि यह कौन है? लोगों ने कहा कि महाराज यह एक बुढ़िया है। वृद्धावस्था के कारण इसकी यह दशा हो गई है। तब महात्मा बुद्ध ने कहा कि ओहो! मनुष्य की वृद्धावस्था में यह दशा हो जाती है। यह पहिला दृश्य

था कि जिसने महात्मा बुद्ध के चित्त पर एक ऐसा धक्का मारा कि जिसने महात्मा को इस चिन्ता में डाल दिया कि जो कुछ करना हो, वह करो ; नहीं तो वह अवस्था अब बहुत शीघ्र आ रही है। महात्माजी यह विचार कर ही रहे थे कि जब तक एक मृत पुरुष आपकी नजर आया। उसे देख फिर लोगों से पूछा कि यह क्या है ? तब लोगों ने कहा कि महाराज यह मर गया है। तब महात्मा ने पूछा कि तो अब यह कुछ भी नहीं कर सकता। इसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो गई। पुनः पूछा कि क्या आप लोगों में से कोई यह बतला सकता है कि इसने अपने जीवन में क्या किया ? आखिर पता लगाने से यह ज्ञात हुआ कि उसने अपनी सारी आयु केवल अपने उदर-पोषण व अपने बाल-बच्चों के ही भरण-पोषण के लिये आटा-दाल, नमक-लकड़ियों में ही बिता दी। महात्मा बुद्ध ने यह सुन महान् शोक किया। उस महात्मा के हृदय पर दूसरा धक्का ऐसा लगा कि जिसने उसी दिन महात्मा बुद्ध को तय्यार कर दिया अर्थात् महात्मा बुद्ध ने उसी दिन यह निश्चय कर लिया कि आज ही मुझे इस गृहस्थ रूपी कीचड़ से निकल जाना है और जो मनुष्यों के मुख्य कर्त्तव्य हैं, उनको भी करना है। आखिर जब रात का समय आया और महात्मा बुद्ध चलने को तय्यार हुए, तो सोचा कि यदि मैं अपनी स्त्री से कहता हूँ और उसने मेरे जाने में कुछ मोह किया, तो मैं अपनी प्रतिज्ञा में रुक जाऊँगा। अतः पास ही सोती हुई स्त्री के जगाने का विचार छोड़ दिया। पुनः आपके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि स्त्री के साथ में जो मेरा बच्चा लेटा हुआ है ; अब मैं इस समय जन्म भर के लिये चल रहा हूँ ; इसलिये न हो तो लाओ इसकी एक चूमी ले लें। साथ ही विज्ञान ने इस मोह फाँस के काटने के लिये यह विचार उत्पन्न

किया कि यदि तूने बच्चे का चूमा लिया और बच्चा जग गया ; फिर बच्चे के जगने से स्त्री जग गई, तो ऐ बुद्ध ! तेरे लिये फिर बाहर चलने के लिये एक बहुत बड़ी कठिनाई आ जायगी ; अतः महात्मा बुद्ध पिता, माता, स्त्री, बेटे और सारे कुटुम्ब से मुख मोड़ चल पड़ा और बहुत कुछ महात्माओं से शिक्षा प्राप्त कर "अहिंसा परमो धर्मः" का झण्डा उठा ; क़रीब-क़रीब एक तिहाई दुनियाँ को वाममार्ग से छुड़ा जीव-रक्षा कराई और इस मौत से बुद्ध ने ही नहीं ; बल्कि स्वामी दयानंद ने भी इसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त की थी। वही सहस्रों मौतें हम लोगों के सन्मुख होती हैं ; पर क्या किसी की आत्मा में किंचित् भी धक्का लगता है ? इसलिये लोगो—

स्वकार्य मद्य कुर्वित पूर्वे न्हे चापिराह्निकम् ।
नहिं प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्यनवाकृतम् ॥

९७—आवागमन (१)

मौज़े नुन्हटा ज़िला भिण्ड (रियासत ग्वालियर) का एक गाँव जो भिण्ड से सात मील को दूरी पर है कुछ समय व्यतीत हुआ कि वहाँ के एक कायस्थ पटवारी जो कि कशीराम के नाम से विख्यात थे ; उनसे और ठाकुर छोटेलाल से इस कारण शत्रुता थी कि पटवारो (कशीराम) ने अपने काग़ज़ात में छोटेलाल के ख़िलाफ़ कुछ ऐसे ग़लत इन्दराज किये थे कि जिससे छोटेलाल के कुछ हक़ मारे जाते थे। एक दिन पटवारी काशीराम किसी सरकारी काम से ज़िले भिण्ड को घोड़ो पर सवार प्रातःकाल के समय जा रहे थे और जब वह एक पीपल के वृक्ष के सामने

पहुँचे, तो ठाकुर छोटेलाल ने वहीं कहीं से छिपकर पहिले उस पट-वारी के एक गोली मारी और गोली से जब गिर गया, तो उसके पास जाकर उसके दाहिने हाथ की कनिष्ठिका (छँगुनी) का आधा और अंगुष्ठ का चौथाई हिस्सा छोड़ के बाक़ी कुल अँगुलियाँ काटकर पटवारी से कहा कि इन्हीं अँगुलियों से तूने ग़लत इन्द्राज कर के मेरे हक़ मारे थे। यह ठाकुर छोटेलाल भी उसी पटवारी के हल्क़े मौज़े नुन्हटा के ही रहनेवाले थे। दैव संयोग नुन्हटा से सात कोस की दूरी पर मौज़े बीसलपुरा में मिहीलाल के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुखलाल रक्खा गया। उसके दाहिने हाथ की अँगुलियाँ कनिष्ठिका आधी और अँगुष्ठ का चौथाई के सिवाय शेष अँगुलियाँ नहीं थीं और छाती में एक गोली का निशान है। छाती की हड्डियाँ कुछ भीतर की ओर झुकी हुई हैं। जब यह बालक बोलने लगा, तो उसके माता-पिता ने परस्पर वार्ता करते हुए कहा कि देखो, परमेश्वर न मालूम शेष अँगुलियाँ बनाना क्यों भूल गया। माता-पिता के यह वाक्य सुन लड़का बोला कि छोटेलाल ठाकुर नुन्हटावाले ने मेरा हाथ काटा था। मैं पहिले जन्म में कायस्थ था। मैं घोड़ी पर सवार प्रातःकाल अपने उसी ग्राम नुन्हटा से भिण्ड को जा रहा था कि मार्ग में पीपल के वृक्ष के पास उसने मेरे पहिले गोली फिर तलवार से हाथ काटा। यह अफ़वाह जब राज्य-कर्मचारियों तक पहुँची, तब उन लोगों ने प्रथम सुखलाल से और फिर उनके माता-पिता से पुनः मौजे नुन्हटा में जाकर जाँच-पड़ताल की और अन्त में जज साहब की मिसिल व सिविलसार्जन के सार्टीफ़िकेट आदिकों का मुक़ाबिला किया। तब वह लड़के का बतलाया हुआ समाचार हूबहू पाया गया। विशेष प्रमाण के लिये अख़बार "जियाजी प्रताप" ता० ८ अगस्त सन् १९१७ ई० व "अवध

अख़बार' ता० ६ सितम्बर सन् १६१७ ई० संक्षिप्त समाचार से देखो।

६८—आवागमन (२)

बंगाल में किसी एक मौज़े से एक बुढ़िया अपनी तेरह वर्ष की कन्या को साथ लिये किसी दूसरे मौज़े को जा रही थी। मार्ग में एक और ग्राम मिला, जिसमें कि जाना उसका अभीष्ट न था; किन्तु वह लड़की एक मकान को पहिचानकर बिला संकोच के उस मकान के अन्दर चली गई। बुढ़िया यह क़िस्सा देख भौचक्की सी रह गई। उसके चित्त में यह विचार हुआ कि कहीं इस लड़की का दिमाग़ तो नहीं बिगड़ गया। इसी की टटोल में दबे पाँव वह भी उस मकान के अन्दर पहुँची, तो क्या देखती है कि लड़की एक पैंतालीस वर्ष की अवस्थावाले पुरुष से नीची निगाह किये बात कर रही है। तब माँ ने पूछा कि यह पुरुष कौन है और तू इसे कब से जानती है। लड़की नें उत्तर दिया कि यह मेरा पति है। चौदह वर्ष के लगभग हुए कि मुझे एक दिवस बिसूचिका हुई थी। मैं उस समय लाल साड़ी पहिरे हुई थी कि जिसके खूँट में पाँच रुपये बँधे हुए थे। जब मैं अधिक बीमार हुई, तब वह साड़ी खोल ली गई और मुझको दूसरा कपड़ा पहना दिया गया। इसके पश्चात् मैं मर गई। मरने के समय मैंने दो लड़के छोड़े थे। वह यदि अब जीवित होंगे, तो युवा होंगे। पुरुष ने सुनकर सोचा तो कहा कि यथार्थ में चौदह वर्ष हुए उसकी स्त्री बिसूचिका से मरी थी और उसके शरीर से लाल साड़ी खोल ली गई थी, जिसमें पाँच रुपये भी बँधे थे। वह साड़ी अब तक मौजूद है, जो कि माँगनें पर उसकी बड़ी बहू ने

देखने को दी। उस लड़की के दोनों लड़के भी जीवित हैं। इसके अतिरिक्त उस लड़की ने सुरमा, मिस्सी, बुन्दे आदि एक खपरहिल में से निकालकर दिखाये, जिनको वह बर्ता करती थी और जिसकी किसीको खबर भी न थी। इस समाचार की जाँच-पड़ताल भी गवर्नमेण्ट के एक आला अफ़सर ने की थी। प्रमाण के लिये "अवध अख़बार" ६ सितम्बर सन् १६१७ ई० में देखो। उसने इस लेख को "अमृत बाज़ार पत्रिका" लाहौर से उद्धृत किया है।

६६—आवागमन (३)

ग्वालियर में तारेघार एक ज़िला है। उसका एक परगना अम्बाह है। अम्बाह में एक ठाकुर ने एक ब्राह्मण को क़त्ल किया। उसी साल किसी ब्राह्मण के घर में इसका जन्म हुआ। जब यह लड़का तीन वर्ष का हुआ, तो उसने अपने पिता से कहा कि मुझे सूबा साहब (कलक्टर साहब) से मिला दो। पिता अचम्भित सा रह गया और उसने विचार किया कि बच्चे ने कदाचित् सुन लिया होगा कि लोग सूबा साहब से मिला करते हैं और उसकी बात पर कुछ ध्यान न दिया। अन्त में वह बच्चा सिर हो गया और घर भर को परेशान करने लगा। अन्त में विवश हो पिता ने सूबा साहब की सेवा में बच्चे को ले जाकर उपस्थित किया। तब उस बच्चे ने सूबा साहब से कहा कि मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है और फिर एकान्त में जाकर अपने मारनेवाले का नाम और पूरा पता बताया और यह भी कहा कि मेरी औरत और बच्चे अभी उपस्थित हैं। मेरे पास कुछ रुपया भी था, जो ज़मीन में गड़ा है। यह सुन जब सूबा साहब ने जाँच की तो सम्पूर्ण बातें यथातथ्य पाई गईं। यह ब्राह्मण भी

गोली से मारा गया था। उसके शरीर में गोली का चिन्ह था। परिणाम यह हुआ कि क़ातिल पकड़ा गया और उसको सज़ा दी गई। इस ज़िले के सूबे में पं० गोपालराव गोबिन्द साबिक डिप्टी कलेक्टर जबलपुर रिटायर्ड गवर्नमेन्ट सरवेन्ट थे। मिस्ल मुक़दमा मौजूद है। जो पुरुष सन्देह करें, वह देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसी रियासत में एक स्थान भेलसा है। यहाँ पर एक वैश्य का लड़का जो अब युवा है और एक लड़की भी है। यह दोनों भी अपनी पिछली जिन्दगी के बहुत से हाल बतलाते हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त मौलाना जलालुद्दीन रूमी की बड़ी अच्छी मसनवी जो दुनिया में एक करके मशहूर है, उसके ऊपर के वर्क़ पर बहुत दिनों से यह शेरें लिखी हुई हैं:—

मसनवी मौलवी मानवी,
हस्तकुरआँ दर जबाने पहलवी॥
मनः च गोयम वस्प ओ आली जनाब,
नेस्त पैगम्बर-वले दारद किताब॥

मसनवी में यह शैर लिखी हुई है—

हफ्तसद हफ्ताद कालिब दीदः अम्॥
हम चू सब्जह बारहा रोईदः अम्॥

७०—बेसमय भाषण.

एक ब्रह्मदेव अपने पुत्र को सदैव यह शिक्षा दिया करते थे कि बेटा, पढ़ने में तो तुम परिश्रम करते ही हो; परन्तु संस्कृत बोलने का भी कुछ अभ्यास किया करो, क्योंकि बिना संस्कृत

बोलने से मनुष्य चाहे कितना ही पढ़ा हो ; पर संस्कृत भाषण नहीं आता है। एक बार वे पिता-पुत्र कहीं जा रहे थे। प्यास के कारण एक कूप पर वे दोनों जल पीने गये। पिता पानी भरने लगे, तो धोखे से यकायक कूप में जा पड़े। तब यह पुत्र बोला कि—

ऐ हल ग्राहिन भ्रातः तातस्सु कूपे निमग्नस्सु देवा।

पिता कुछ तैरना जानते थे ; इस कारण कुएँ में तैरते हुए बोले कि दुष्ट, तू इसी समय संस्कृत का अभ्यास करेगा। भला, यह तेरी बोली हलवाह समझेगा। इस कारण सीधी-सीधी भाषा बोल। पुनः जब पुत्र ने सीधे-सीधे बुलाया तब हल-वाहों ने उसके पिता को आकर निकाला।

७१—पराया धन रखने से हानि.

एक सेठजी से एक चालाक कुछ बर्तन माँगकर ले गया और कुछ दिन बाद कुछ और आबखोरा गिलास विशेष मिला-कर वह चालाक सेठजी को वापस दे गया। तब सेठजी ने कहा कि भाई साहब, इसमें तो यह तीन-चार बर्तन आपके ज्यादा हैं। तब उसने कहा कि यह आपके बर्तनों के इतने दिनों में कच्चे-बच्चे उत्पन्न हो गये थे। सेठजी ने समझा कि अच्छा बेवकूफ़ है ; रक्खो। पुनः कुछ दिन में वह सेठजी के सोने चाँदी के बर्तन माँग ले आया ; सो सेठजी पहिले के परके तो थे ही ; अतः सेठजी ने जो-जो उसने माँगे वह-वह फ़ौरन् निकाल दिये। पुनः चालाक उन बर्तनों को फिर देने न आया। तब बहुत दिन बाद सेठजी ने उसके यहाँ जाकर कहा कि क्यों भाई, वह बर्तन न दे गये।

तब इसने कहा कि वह बर्तन तो मर गये। तब सेठ ने कहा कि कहीं बर्तन भी मरते हैं। तब चालाक ने कहा कि कच्चे-बच्चे होते और मरते नहीं? यह सुन सेठ चुप हो गया।

७२--आदाब-अलक़ाब के साथ बार्ता

एक मोलवी साहब का तालिबइल्म हमेशा 'तुमने ऐसा कहा, इसलिये हमने ऐसा किया।' इस तरह की बात-चीत किया करता था। तब मोलवी साहब ने कहा कि तू इतना तो पढ़ गया, पर जाहिल का जाहिल ही रहा। देख! हमेशा जब किसी बड़े से बात-चीत कर, तो बड़े आदाब व अलक़ाब के साथ किया कर। दो ही चार दिन के बाद मौक़ा ऐसा आया कि कोई त्योहार आन पड़ा, जिसमें कि मोलवी साहब ने अपना वह अंगा पहना कि ज़िसमें उनके क़रीब-क़रीब पाँच सौ रुपये लगे थे। उस अंगे के एक खूँट में आग लग गई। तब उस तालिबइल्म ने कहा कि—

"ज़ात तक़द्दुस आयात रुज़हर फ़ैज इलाही मसदर फ़ज़ायल नामुतना ही क़िबला को नेन बकाबा दारैन मख़दूम व मुकर्रम बन्दा साया बुलन्द बुज़ुर्गवार बाद आदाय आदाब तसलीमात शागिर्दान: व फ़र्ज़िन्दान: बजा लाकर इल्तिमाश ज़ात अक़दस ख़िदमत बाबर क़ांत में यह है कि आं जनाब फ़ैजमाब पीर दस्त गीर रोशन ज़मीर के अङ्गरखे के दामन में आग लग गई है।"

जब तक मौलवी साहब सिसकारियाँ छोड़-छोड़ इधर-उधर हाथ फेंक बदन की आग बुझाने के लिये बेतहाशा कूद रहे थे। वह अपने शागिर्द से यों बोले कि—

ऐ बदबख्त कमीने खसलत इसी वक्त तुमको जुमला अल-
काब आदाब बिलतशरीह् अदा करने थे।

७३–दानेदार दुश्मन नादान दोस्त.

किसी राजा का एक अत्यन्त भक्त, विश्वासपात्र अंगरक्षक बानर अन्तःपुर में ही रहता था। एक समय वानर सोये हुए राजा के पंखा लिये हवा कर रहा था। उसी समय राजा के उसी कमरे में कि जिसमें राजा शयन को प्राप्त था, चोर सेंध कर प्रवेश करने ही वाले थे। इसी समय राजा की छाती पर एक मक्खी बैठ गई, जिसको वह रक्षक वन्दर बार-बार उड़ाता था; पर वह मक्खी नहीं मानती थी। राजा मक्खी से तंग आ रहा था। कभी इधर करवट लेता, कभी उधर; आखिर जब वह मक्खी न मानी, तब उस स्वभाव से चपल बानर ने क्रोध कर तीक्ष्ण खड्ग ले उस मक्खी पर प्रहार करना चाहा। उस मूर्ख को यह ज्ञात न हुआ कि इस तलवार से मक्खी को मारने से राजा भी कट जायगा। बन्दर तलवार म्यान से निकाल चलाने ही वाला था कि सेंध से चोरों ने देखा कि यह मूर्ख राजा को मारे ही देता है। अतः चोरों ने जाकर बन्दर का हाथ पकड़ लिया और राजा को जगाकर कहा कि महाराज हम आपके यहाँ चोरी करने आये थे, सो आप सो रहे थे। यह बन्दर आपके हवा कर रहा था। इतने में एक मक्खी आपके ऊपर आ बैठी। उसे बार-बार बंदर उड़ाता था; पर वह जब न उड़ी, तब यह तलवार ले आपकी छाती पर जो मक्खी थी उसको मारना चाहता था। इस मूर्ख को यह ज्ञात नहीं कि इससे तो हमारे स्वामी के भी प्राण जाँयगे। तब हमने आकर इस बन्दर का हाथ

पकड़ आपकी रक्षा की। पुनः राजा को उस दिन से ज्ञात हो गया कि दानेदार दुश्मन अच्छा, नादान दोस्त अच्छा नहीं; अतः बन्दर को मरवा चोरों को बहुत सा धन दे विदा किया।

७४—धन से प्रयोग.

न बसूला बन सब अपनी ही ओर को समेटो और न रंदा बन सब बाहर ही को फेंको; किन्तु आरा की भाँति कुछ प्राप्त करो, कुछ खर्च भी करो और कुछ रक्खो भी; यथा—

अर्थानामर्जनं कार्यं वर्द्धनं रक्षणं तथा।
भक्ष्यमाणो निराधानः क्षीयते हिमवानपि॥

७५—मेल.

सज्जनो! परस्पर नारंगी की भाँति न मिलो कि ऊपर तो रंगत एक; पर भीतर एक-एक फाँक अलग। यही नहीं, किन्तु रेशा-रेशा अलग; बल्कि खरबूजे की भाँति जो ऊपर से खरबूजे की फाँकों के समान चाहे अलग भी हों; पर अन्दर एक रंगत और एक स्वाद यथा—

नारिकेलसमाकाराः दृश्यन्ते सज्जना समाः।
अन्ये च बदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः॥

७६—मातृपितृ-भक्ति.

आप लोगों में से विरला ही कोई ऐसा होगा कि जिसने

महात्मा श्रवण का नाम न सुना हो। महात्मा श्रवण के माता-पिता अन्धे थे; पर साथ ही साथ उनके महात्मा श्रवण सा पुत्र परमेश्वर ने दे दिया था। महात्मा श्रवण बाल्यावस्था से ही चांचल्यतारहित, महाशान्त, बड़े सदाचारी और सुशील थे। आपके बर्ताव से उस समय कोई ऐसा प्राणी न था कि जो प्रसन्न न हो। इन सब बातों के अतिरिक्त सबसे विशेष लोकोत्तर बात यह थी कि माता-पिता के आप अद्वितीय भक्त थे। प्रातःकाल उठ प्रभू परमात्मा का स्मरण कर अपने आराध्य माता-पिता के चरण स्पर्श कर उनके बिस्तर लपेटकर रख देते थे। माता-पिता की अँगुली पकड़ उनको पाखाने फिरा उनके लिये मृत्तिका और दन्त-धावन लेकर जल भर के उनको कुल्ला करा देते थे। उन्हें स्नान करा सन्ध्या के लिये आसन बिछा फिर उनके भोजनों के सामान का प्रयत्न करते और माता-पिता से पूछ जहाँ तक हो सकता था यथाशक्ति उनके इच्छित पदार्थों को ही अपनी स्त्री से कह तय्यार कराया करते थे। श्रवण की स्त्री बड़ी दुष्टा थी; यहाँ तक कि वह सदैव उन अन्धी-अन्धों को निकृष्ट भोजन दिया करती थी और आप व अपने पति को अच्छा भोजन दिया करती थी। लोकोक्ति तो यहाँ तक प्रसिद्ध है कि उसने एक हाँडी ऐसी बनाई थी कि जिसमें दो भाँति की वस्तुयें पका करती थीं। प्रायः जब वह चारु बनाया करती थी, तो एक ओर तो मट्ठे की महेर बनाती थी और दूसरी ओर खीर तय्यार किया करती थी। सो अपने पति को तो खीर परोसा करती थी और उन अन्धी-अन्धों को महेर परोसा करती थी। एक दिवस अनायास ही श्रवणजी ने अपनी थाली तो पिता के आगे रख दी और पिता की थाली आपने ले ली। तब आपको ज्ञात हुआ कि यह मेरी स्त्री दुष्टा मेरे मूल

माता-पिता के साथ यह बर्ताव करती है। अतः आपने महान् शोक किया; यहाँ तक कि घंटों अश्रुधारा आपके नेत्रों से बन्द न हुई और आपने कहा कि असती के पीछे आज तक मेरे माता-पिता ने बड़ा ही कष्ट पाया। वह अपने उस स्त्री को त्याग कर माता-पिता के लिये एक काँवर बना जब कहीं दूर देश जाते थे, तो एक ओर माता और दूसरी ओर अपने पिता को उस काँवर पर बिठा अपने कंधे पर लिये-लिये घूमा करते थे। धन्य, श्रवण ! धन्य; क्या ऐसे-ऐसे भी सपूत कभी इस भारत माता की गोद में थे।

श्रवण के माता-पिता जब पिपासित होते, तो वह उसी समय पानी पिलाते; जब क्षुधित होते, तब उनको भोजन कराते; सायं-काल उनकी सेवा में बैठ उनके चरण चापा करते थे; बस यों समझिये कि जैसे महात्मा दिलीप गो-सेवा किया करते थे; उससे कई गुण अधिक आप पिता के अनुगामी थे। एक बार महात्मा श्रवण पिता-माता को छोड़ पानी भरने गये थे। उसी समय महाराज दशरथ भी शिकार को गये हुए थे। अतः ताल में महात्मा श्रवण पानी भर रहे थे कि राजा ने धोखे से कोई दुष्ट जीव समझा और श्रवण के तान के एक ऐसा बाण मारा कि जिससे यह ईश्वर को स्मरण कर भूमि पर गिर गये और बोले कि अहो, प्रभू ! मैंने ऐसा किसका क्या अपराध किया था कि जो मेरी उसने यह दशा की; हा ! अब मेरे उन अन्धे माता-पिता की क्या दशा होगी। यह दीन वाणी सुन महाराज दश-रथ के होश उड़ गये और तत्काल ही उस ब्राह्मण के पास पहुँच उससे पूछा कि आप कौन हैं। उसने अपने माँ-बाप का नाम बतला सब-वृत्तान्त कहा और यह भी कहा कि मेरे माता-पिता अमुक स्थान पर बैठे हुए हैं। वह दोनों अन्धे बड़े पिपा-

सित हो रहे हैं। यह सुन राजा ने महात्मा श्रवण से क्षमा चाही। महात्मा श्रवण तो स्वयं क्षमा स्वरूप थे ही; उन्होंने कहा कि मैंने तो आपके क्षमा माँगने से पहिले ही क्षमा धारण कर ली है। आप कृपा कर यह जल ले मेरे पिपासित माता-पिता को पिलाइये; क्योंकि बहुत बड़ा अरसा हुआ। उनसे जाकर आप क्षमा माँगें। कहीं ऐसा न हो कि वे दोनों आपको शाप दे दें। यह कह श्रवणजी ने प्राण छोड़ दिये। अब दशरथजी अति विकल हो उन अन्धी-अन्धों के पास जल लेकर गये। ज्यों ही उन दोनों ने आहट पाया कि बोले—"बेटे! तूने बड़ी देर लगाई। हमारा कण्ठ प्यास के कारण सूख रहा था और साथ ही हम घबड़ा रहे थे कि हम अन्धों की एक सहारे की लकड़ी जो तुम हो, वह कहाँ गये; क्या हुआ।" दशरथ ने यह दशा देख दोनों हाथ जोड़ उन दोनों को अभिवादन कर कहा कि मैं अयोध्या का राजा दशरथ हूँ। मैं शिकार खेलने को आया था। इधर आपका पुत्र आपके लिये अमुक ताल पर जल भरने गया था। मैंने शिकार के धोखे से एक बाण चलाया कि जो आपके पुत्र के जाकर लगा और जिससे आपका पुत्र मर गया। यह सुनना था कि वे दोनों ढाढ़ मार कर रोने लगे और कहते थे कि ऐ सपूत! अब हमारी सेवा कौन करेगा; हमें कंधे पर लेकर कौन चलेगा; हमें भूखा-प्यासा देख कौन व्याकुल होगा और उसी समय प्रयत्न करेगा। पुनः राजा ने कहा कि महाराज शोक छोड़ यह जल पी लीजिये। वहाँ किसका जल पीना; उन दोनों ने कहा कि ऐ दशरथ! तू मुझे वहाँ उस ताल के किनारे ले चल, कि जहाँ मेरा प्राणाधार श्रवण पड़ा है। राजा उन दोनों को कंधे पर धर ले गया कि जहाँ उन दोनों का पुत्र पड़ा था। वहाँ वे दोनों पुत्र के शरीर को टटोल-टटोल अपने रोने से

पृथ्वी और आकाश दोनों को रुला रहे थे और कहते थे कि ऐ हम अन्धों की लकड़ी ! अब हम किसके सहारे चलेंगे और कौन हमारी सेवा करेगा। आप जानते हैं कि इस कष्ट के सामने संसार में दूसरा कष्ट नहीं; फिर भी एक बेटा और वे दोनों अन्धे, वन में वास, कहो उन्हें कैसे धैर्य्य हो; अतः महा दुखी हो दशरथ को यह शाप दिया कि जिस भाँति पुत्र-शोक से मेरे प्राण निकलते हैं, ऐसे ही दशरथ तेरे भी निकलें; अतः लोगो ! तुम भी इस महात्मा श्रवण की भाँति तथा धर्मशास्त्र की इस आज्ञा के अनुसार कि—

आचार्यो ब्राह्मणो मूर्तिः पिता मूर्ति प्रजापते।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्रातास्वो मूर्तिरात्मनः॥
आचार्यश्च पिता चैव मात भ्राता च पूर्वजः।
नार्त्तेनाप्यव मन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥

अर्थ—गुरु वेद, पिता ब्रह्मा, माता पृथ्वी और भ्राता आत्मा की मूर्ति है। इनका किसी को अनादर न करना चाहिए; पर ब्राह्मण तो किसी भाँति इनका अनादर करे ही नहीं।

यं माता पितरो क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्याकर्तुं वर्षं शतैरपि॥
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेवत्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥

अर्थ—सन्तान की उत्पत्ति पालन में जो क्लेश माता-पिता को होता है, उस क्लेश का बदला सन्तान सैकड़ों वर्ष में भी नहीं दे सकती; इसलिये सर्व काल में उन तीनों के प्रिय आचरण करे; इन तीनों के प्रसन्न से ही सम्पूर्ण तप पूर्ण होते हैं।

तेषां त्रयाणां सुश्रूषा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यनुज्ञातो धर्म मन्यं समाचरेत ॥
त एव ही त्रयो लोकास्तएवत्रय आश्रमाः ।
त एव ही त्रयो वेदास्तएवोक्तास्त्रयोग्नयाः ॥

अर्थ—उन तीनों की सेवा परम तप कहाती है और कुछ अन्य धर्म उनकी आज्ञा के विना न करे ; क्योंकि यही तीनों लोक, यही तीनों आश्रम, यही तीनों वेद, तथा यही तीनों अग्नि हैं।

पिता वैगार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्नि दक्षिणः स्मृतः ।
गुरु राहवनीयस्तु साग्नि त्रेता गरीयसी ॥
त्रिष्व प्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिपि मोदते ॥

अर्थ—पिता गार्हपत्य, माता दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नि है। यह अग्नि प्रसिद्ध तीन अग्नियों से बड़े हैं। गृहस्थ इन तीनों के विषय में प्रमाद को त्यागता हुआ सुश्रूषा करे, तो मानों तीनों लोकों को जीते और अपने शरीर से प्रकाशमान होकर देवताओं के समान सुख में प्रसन्न रहे।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृ भक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरु सुश्रूषयात्वेवं ब्रह्म लोकं समश्नुते ॥
सर्वे तस्यादृता धर्मायस्यैतेत्रय आदृताः ।
अनादृस्तातु यस्यैते सर्वास्तस्याऽफलाः क्रियाः ॥

अर्थ—माता की भक्ति से इस लोक को, पिता की भक्ति

से मध्य लोक को और गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। जिसने इन तीनों का सत्कार किया, उसको सम्पूर्ण धर्म-फल मिलते हैं और जिसने इन तीनों की सेवा नहीं की उसके सब कर्म निष्फल हैं।

यावत त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेष्वेव नित्यं सुश्रूषां कुर्यात्प्रिय हिते रतः ॥
तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदा चरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनो वचन कर्मभिः ॥

अर्थ—इस कारण उनकी प्रीति और हित में परायण होता हुआ जब तक वे जीवें तब तक चाहे और कुछ न करे; किन्तु उनकी नित्य सुश्रूषा करे। उन तीनों की आज्ञा के अनुसार जो परलोक के निमित्त कर्म करे; सो मन, बचन और कर्म से उन्हीं के निवेदन कर दे।

त्रिष्वेतेष्विति कृत्यंहि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

अर्थ—माता-पिता और गुरू की सुश्रूषा से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं; इस कारण यही साक्षात परम धर्म है और अन्य उपधर्म हैं।

७७–भरतखण्ड

इस देश में महाराज ऋषभदेव कि जिनके लड़के भरत बड़े तपस्वी और महान् योगी हुए; यहाँ तक कि योग के सात अङ्गों को साधन कर आप अष्टम अङ्ग समाधि में कई-कई दिवस तक

समाधिस्थ रहते थे। एक नदी के तट पर आप समाधि लगाये ब्रह्मानन्द आनन्दामृत पान किया करते थे। एक दिन एक हिरणी जो गर्भिणी थी और उसी समय बच्चे जननेवाली थी, यहाँ तक कि बच्चे का सिर कुछ बाहर को निकल भी आया था; ऐसी अवस्था में एक वधिक ने उस हिरणी का पीछा किया। वह बेचारी मृत्यु से भयभीत हो उस नदी के तट पर गई और उस नदी को उछल कर पार करना ही चाहती थी कि यह विचार कर ज्योंही उस हिरणी ने छलाँग मारी, त्योंही वह बच्चा, जो हिरणी प्रसव करना चाहती थी, नदी में गिर गया और गोते खाने लगा। इतने ही में महात्मा भरत की समाधि खुल गई और उन्होंने उस बच्चे को नदी में डूबते देखा। आप तड़ाक से आसन से उठ, उस बच्चे को नदी से निकाल, उसे कपड़े से पोंछ, अग्नि से तपा, अब इस चिन्ता में हुए कि कहीं से दुग्ध लाकर इसे पिलायें। इसकी रक्षा करनी चाहिये। यह विचारकर आप एक ग्राम में गये; वहाँ से दूध ला, उस बच्चे को कई बार पिला, उस दिन रक्षा की। अब तो उस दिन से महात्मा का वह नित्यकर्म हो गया था अर्थात् अब कई-कई दिन की समाधि आपने इसलिये त्याग दी कि यदि मैं कई दिन के लिये समाधिस्थ हो गया, तो यह हिरणी का बच्चा, जिसका एक मात्र मेरा ही आधार है, मर जायगा। इसलिये अब आप पाँच-छः घंटे से योगाभ्यास अधिक नहीं करते थे और रात-दिन उस बच्चे के ही पालन-पोषण में लगे रहते थे। एक दिवस वह हिरणी का बच्चा कहीं चला गया। तब तो महात्मा भरत को बहुत बड़ा कष्ट हुआ और भरतजी बहुत विकल हो, इधर-उधर खोजते रहे। आखिर जब वह बच्चा उस दिन न आया, तब महात्मा भरत बोले कि आज मेरा वह पुत्रवत् बच्चा जाने कहाँ अपने छोटे-छोटे पैरों से पृथ्वी को सुशो-

भित करता होगा और आज न जाने उसने क्या अहार किया होगा। इस भाँति वह महात्मा अत्यन्त ही दुखी हुए। आखिर वह बच्चा आ गया, तब तो वह भरतजी, यद्यपि पहिले भी उसकी रक्षा के लिये जहाँ-जहाँ वह बच्चा जाता था, वहाँ-वहाँ उसको रक्षा के निमित्त उसके साथ रहा करते थे और समय-समय पर क्षुधा-तृषा का उपाय किया करते थे; पर उस दिन से तो किसी भाँति बच्चे का साथ नहीं छोड़ते थे। इन्हींके लिये महात्मा कपिल ने लिखा है कि—

असाधनानु चिन्तनं वन्धाय भरतवत् ।

अर्थ—हरिणी के बच्चे की चिन्ता के कारण भरत उस जन्म में मुक्ति से रह गया।

उस समय के पुरुषों ने जब इस भाँति महात्मा भरत को दया का समुद्र देखा, तो लोगों ने विचार किया कि जो पुरुष एक हिरणी के बच्चे के कष्ट को नहीं देख सकता है वह किसी के कष्ट को क्योंकर देख सकेगा; अतः हमारे सबसे महाराज होने के योग्य एक यही है। ऐसा विचार सम्मति कर जनता ने महात्मा भरत को इस देश का महाराज बना दिया। महात्मा भरत इस भूमि के चक्रवर्ती राजा थे और उनके राज्य में पुरुषों की तो कौन कहे, किसी पशु-पक्षी ने भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं पाया। समय-समय पर आपके राज्य में वृष्टि अन्नादि की उत्पत्ति होती थी। आप के चार पुत्र उत्पन्न हुए और इन्द्र के राजा होने के कारण इन्हींके समय से इस देश का नाम भरतखण्ड हुआ।

७८-काम.

महाराज भर्तृहरि बड़े ही विद्वान और विचारशील थे। आप

की नीति भी इतनी प्रबल थी कि सर्व साधारण आपसे अत्यन्त ही प्रसन्न रहते थे; पर सांसारिक द्वन्द्व कुछ आप पर भी अपना अधिकार जमाये हुए थे। महाराज भर्तृहरि की कुछ काम में अधिक प्रवृत्ति होने के कारण आप अपनी रानी से अधिक प्रेम रखते थे, रानी कोतवाल से स्नेह रखती थी, कोतवाल एक वेश्या से अपना प्रेम रखता था और वह वेश्या राजा से प्रीति रखती थी। एक दिन किसी पुरुष ने एक बहुत उत्तम फल लाकर राजा को दिया और उस फल का गुण उसने राजा से यह बतलाया कि जो पुरुष इस फल को खा ले, वह सदैव युवा ही बना रहता है, कभी बुड्ढा नहीं होता; इसलिये महाराज आप इस फल को खाइये; ताकि हम लोगों की रक्षा के हेतु आप सदैव इसी भाँति बने रहें; पर वहाँ राजा के चित्त में तो कुछ और ही समाई हुई थी। अतः राजा ने सोचा कि इस फल के हमारे खा लेने से क्या होगा; बल्कि यह फल हम अपनी प्राणप्यारी रानी को दें कि जिससे वह सदैव युवा बनी रहे। राजा ने उस फल को रानी को दिया और कहा कि इस फल का यह गुण है कि जो कोई खाय, वह सदैव जवान बना रहता है। जब राजा फल देकर चला गया, तब रानी ने यह सोचा कि मेरे इस फल के खा लेने से क्या होगा। इसलिये न हो तो मैं इस फल को अपने यार कोतवाल को दे दूँ, ताकि वह सदैव युवा बना रहे। ऐसा निश्चय कर रानी ने उस फल को कोतवाल को दे दिया और साथ ही उस फल के गुण भी वर्णन कर दिये। तब कोतवाल ने विचार किया कि इस फल को मेरे खाने से क्या होगा; अतः मैं इस फल को उस वेश्या को दूँगा कि जिससे वह सदैव जवान बनी रहे। ऐसा विचार वह फल वेश्या को दिया और साथ ही उस

फल की तारीफ़ उस रण्डी से कर दी। तब उस रण्डी ने यह सोचा कि मेरे इस फल के खा लेने से क्या नतीजा। इसलिये मैं इस फल को राजासाहब को दूँगी; ताकि राजा साहब हमेशा जवान बने रहें और उनसे मैं द्रव्य और खाने-पीने तथा विषयानन्द दोनों तरह के ऐश भोगती रहूँ। बस उसने अपने चित्त में ठहरा वह फल जाकर राजा को दिया और साथ ही उस फल का गुण राजा साहब से कहा। बस ज्यों ही वह फल राजा साहब के हाथ में आया, त्यों ही राजा उस फल को पहिचान गया और पहिचानकर उस वेश्या से पूछा कि तूने इस फल को कहाँ से पाया। रण्डी ने इसका जवाब देने में बहुत इधर-उधर किया। आखिर जब राजा ने उसे डाँटा, तो रण्डी ने कह दिया कि मुझको कोतवाल साहब ने दिया है। यह जान राजा ने कोतवाल को बुलाया और पूछा कि आपने यह फल कहाँ पाया। कोतवाल साहब ने बहुत कुछ हीले-हवाले किये; पर कोतवाल साहब की एक भी न चली और राजा साहब का वह सवाल ज्यों का त्यों क़ायम रहा। जब राजा साहब ने देखा कि यह यों न बतायेगा, तब कोतवाल के लिये प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। आखिर कोतवाल को सब कह देना पड़ा। तब राजा को अपार खेद प्राप्त हुआ और उसी समय से राजा के चित्त में ऐसा वैराग्य समाया कि भर्तृहरिजी ने सम्पूर्ण राज-पाट छोड़ कपड़े रँग बनवास लिया और पहिला श्लोक आपने यह बनाया कि—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।

अस्मत्तकृतेक्त परितुष्यति कदाचिदन्यां ,
धिक्तां च तं च इमां च मदनं च मां च ।

अर्थ—जिसकी मैं निरन्तर चिन्ता करता हूँ, सो मुझसे विरक्त होकर दूसरे जन की इच्छा करती है ; वह जन अन्य स्त्री नाम वेश्या पर आसक्त है ; और वह वेश्या हम से प्रसन्न है ; इसलिये मेरी प्रिया को धिक्कार है, जो दूसरे जन को चाहती है ; और दूसरे जन को जो अन्य स्त्री को चाहता है ; और इस अन्य स्त्री को जो फिर मुझसे प्रसन्न है ; और मैं जो इसमें फँसा हूँ ; और कामदेव को भी धिक्कार है कि जिसकी यह प्रेरणा है।

पुनः जब महाराज इस महान् प्रबल राक्षस से छूट विज्ञान के समीप गये, तब आपने एक श्लोक यह जो ऊपर लिखा है इसी भाँति के तीन सौ श्लोकों में तीन शतकें—नीति-शतक, शृंगार-शतक और वैराग्य-शतक—यह तीनों मिलाकर भर्तृहरि-शतक नाम से यह पुस्तक बनाई है कि भूतल में आज कोई ऐसा पण्डित नहीं कि जो उस महात्मा की रची पुस्तक के श्लोक अपने कण्ठ पर न रखता हो और वह ऐसी अनुपम पुस्तक है जो प्रायः सभी विषयों में काम देती है। इसके अतिरिक्त और भी कई पुस्तकें आपने बनाई हैं। अतः लोगो ! इस राक्षस से बचो। अब हम इस काम को दिखलाते हैं कि काम क्या है।

कामम् रेतसि अभ्यानुज्ञा अनु मतौ कामः। इच्छायाम् अनुरागे फल तृष्णायाम् भिषयाभिलाषे ॥

७६-क्रोध.

एक मुसलमान जमादार साहब शिवली ज़िला कानपुर के

थाने में नियत होकर आये। आपके भाई कई अच्छे-अच्छे ओहदों पर थे। कुछ तो स्वयं जमादार, कुछ भाइयों की ओहदेदारी का जोस, इन कारणों से और कुछ स्वभाव से भी, आप महा क्रोधी थे। आप हमेशा किसी को पिटवाते और किसी को गाली देते, इसके सिवा उनकी और हरकतें लिखते हुए क़लम काँप उठती है। उनके यहाँ हमारे यहाँ का एक बुड्ढा पठान मुलाज़िम था। उससे भी आप कभी-कभी कुछ सख़्त-सुस्त कहा करते थे। एक दिन बाज़ार मैंथा से जो वहाँ से दो कोस की दूरी पर है, गुलालखाँ पठान जमादारजी के लिये गोश्त लाया और गोश्त-रोटी बनाकर तय्यार किया। जमादारजी मैं अपने लड़के के, जिसकी उम्र ६ साल की थी, खाना खाने गये, तो गोश्त कहीं जमादारजी के मुआफ़िक़ नहीं बना था; इसलिये आपने गुलालखाँ पठान को बहुत सी गालियाँ दीं। गुलालखाँ सब गालियाँ सुनते रहे। आखिर जमादार साहब गुलालखाँ पठान को बेटियों की गाली देने लगे, तो गुलालखाँ ने धीरज में कहा कि हुजूर! बेटी की गाली न दो; पर जमादार साहब ने न माना। आख़िर उसी दिन रात में जमादार साहब मै अपने उस लड़के के कि जिसको उम्र छः-सात साल की थी चारपाई पर सो रहे थे। पास ही दारोग़ाजी की किर्च रक्खी हुई थी। गुलालखाँ पठान ने वह किर्च उठा ली और मियान से निकाल बच्चे को तो उसने छोड़ दिया; पर जमादार साहब के मुँह में ही जाने उसने कितनी किरचें मारीं। परिणाम यह कि अंगुल-अंगुल मुँह काट डाला। यद्यपि थाने के और आदमी उस समय गुलालखाँ से डर रहे थे; पर आप किसी से कुछ न बोले। दीवानजी के पास जा अपने सब इज़हार लिखाये। इज़हारों में आपने यही लिखाया कि इसने हमें बेटी की गालियाँ दीं। मैं रोकता था;

पर यह न माने ; अतः जिस मुख से इसने गाली दिया वही मुख मैंने काट दिया। खैर, फिर इसका मुक़दमा चला। गुलालखाँ ने वहाँ कचहरी में भी अपने वही इज़हार रक्खे। वहीं कचहरी में गुलालखाँ के लड़के गुलालखाँ को बहुत कुछ समझाते रहे कि तुम अपने इज़हार पलट दो, तो बच जाओ ; तब गुलालखाँ पठान अपने बच्चों से बोले कि देखो अब हमारी उम्र साठ वर्ष की हुई, इसलिये तुम हमसे झूठ क्यों बुलवाते हो। आख़िर गुलालखाँ को सूली हुई। बस समझ लो कि क्रोध का फल बुरा है। किसी ने कहा है कि जहाँ क्रोध तहँ काल। अब क्रोध क्या है।

स्वपरोपकार प्रवृत्तिहेतौ अभिज्वलनत्मके अन्तःकरण वति विशेषे इच्छाभिधादात् क्रोधो भवति ॥

८०—लोभ.

एक जुआरी अपने घर से सिर्फ़ एक रुपया लेकर चला। उसने एक दाँव पर रख दिया, तब दो हो गये ; फिर दो रख दिया, तब चार हो गये। इसी भाँति चार के आठ, आठ के सोलह ; अब तो वह जुए में एक ओर बैठ उसने बहुत सा धन जीता ; परन्तु फिर भी उसकी लोभ की वृत्ति शान्त न हुई। यही कहता रहा कि अब के इतना रख दूँ, तो इतना और हो जाय। आख़िर वह सब हार गया और घर से भी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति ला लाकर गवाँ दी, यहाँ तक कि भिक्षा माँगने का पात्र भी न रह गया। बैठकर सोचने लगा कि देखो जब मेरे पास एक रुपया था, तब मैं यह चाहता था कि दो हो जायँ, तो बहुत अच्छा ; फिर मेरे

जब दो हो गये थे, तब मैंने चार की इच्छा की और चार हो गये तब आठ की इच्छा की; इस प्रकार दस बीस हज़ार पर क्या कहीं भी मुझे संतोष न हुआ कि जो इतना ही धन मेरे पास रह जाता; यहाँ तक लोभ समाया कि मैंने अपना भी सब खो दिया।

एक कुत्ता अपने मुख में रोटी दबाये हुए एक स्वच्छ दरिया के निकट पहुँचा और उस दरिया की ओर ग़ौर से देखने लगा तो उसे क्या दिखलाई पड़ा कि एक और कुत्ता रोटी लिये खड़ा है। बस यह कुत्ता देखकर अपनी रोटी छोड़ दरिया में बड़े ज़ोर से कूद पड़ा और ऐसा डूबा कि फिर उसे कहीं सहारा न मिला। जभी से यह मसला चला है कि—

आधी छोड़ एक को धावै।
ऐसा डूबै थाह न पावै॥
पर द्रव्याभिलाषः लोभः।
अन्यायेनोपार्जितं द्रव्यं लोभः॥

८१—मोह.

एक महानन्द नामक सन्यासी थे। जब इन्होंने सन्यास नहीं लिया था इनके एक मित्र चन्द्रमणि बाल्यावस्था ही से मित्र थे। दोनों एक ही ग्राम में रहते थे। दोनों बड़े योग्य पढ़े-लिखे थे। उनमें महानन्दजी तो कुछ साधारण ही विद्या जानते थे, पर चंद्रमणिजी बड़े ही योग्य, विद्वान् और विचारवान थे। उन दोनों ही के चित्त में कुछ-कुछ विराग था, पर चन्द्रमणिजी के

चित्त में विराग के साथ ही अपने स्त्री-पुत्रों में इतना प्रबल मोह था कि वे कहीं जायें, कहीं आयें, उनका चित्त अपने स्त्री पुत्रादिकों में ही रहता था। एक बार दोनों ने यह विचार किया कि चलो यार इस गृहस्थरूपी कीचड़ से निकल संन्यास लें। यह निश्चय कर दोनों घर से चल पड़े। चलते हुए ग्राम से बहुत दूर तक निकल आये। जब एक संन्यासी महाराज से सन्यास लेने की तय्यारी हुई और दूसरे दिन सन्यास लेने का विचार भी था, एक दिन पहले चन्द्रमणिजी बोले कि हम संन्यास लेने का तो विचार करते हैं, पर हमारा चित्त अभी घर के बाल-बच्चों में लगा है। तब महानन्दजी जिनका कि पहिला नाम अयोध्याप्रसाद था चन्द्रमणिजी को संन्यास से रोक घर को लौटा दिया और आपने दूसरे दिन संन्यास ले लिया। चन्द्रमणि लौटकर अपने घर आया। यह अपने घर का बहुत बड़ा मालदार था। यह उसी भाँति बड़े प्रेम से अपने दिन बाल-बच्चों में गुजारता रहा। एक ही साल के अन्दर इसकी स्त्री स्वर्गवास कर गई। अब तो यह अत्यन्त दुखित रहने लगे। इस अवसर में महानन्दजी एक बार अपने ग्राम में फिर भ्रमण करने आये। इनसे फिर बातचीत हुई। तब चन्द्रमणि बोले कि आप बड़े अच्छे हैं। इस किच-किच से निकल गये; पर महात्माजी हम क्या बतावें। हमारी तो धर्मपत्नी भी स्वर्गवास कर गई। अब एक वही आपका बच्चा है। उसीमें दिन-रात लगे रहते हैं। वह छोड़ा नहीं जाता है; नहीं तो हम भी अब इस झंझट से अलग हो जाते। ईश्वर की विकराल गति, कौन जानता है कि किस समय क्या होगा। दूसरे वर्ष प्लेग में वह बच्चा भी आपका मर गया। अब तो आपके दुःख का पारावारा ही न रहा। तब आपने कहा कि इसी सुख को देखने के लिये हम इस गृहस्थ में रहे थे। बस,

इसके कुछ दिनों के पश्चात् आपने संन्यास ले लिया। ठीक है कि यह मोह बड़ा प्रबल है, इससे छूटना बहुत कठिन है।

लोह दारु मयैः पाशैः पुमानबद्धो विमुच्यते।
पुत्र दारु मयैः पाशैः बद्धो नैव प्रमुच्यते॥

इसके अतिरिक्त विश्वामित्र, मेनका और नारद ऋषि का माया कन्या से मोहवश प्राप्त होना किन्हीं व्यक्तियों से छिपा नहीं है।

देहादि आत्मबुद्धिः मोहः मुहवै चित्ते अविद्या मोहः।
मेदिनी दुखं मोहः अविवेको मोहः धर्मविमूढ़त्वं मोहः॥

८२—अहंकार

इस विषय में शायद हमको रावण से अच्छा दूसरा दृष्टान्त नहीं मिल सकता है। कौन नहीं जानता कि रावण के हर विषय में ख़ुदी समाई हुई थी; यहाँ तक कि धन, बल, विद्या वह किसी में अपने बराबर दूसरे को नहीं समझता था; बल्कि इसी अभिमान से ही वह एक बार दिग्विजय करने के लिये घर से निकला था और इधर-उधर घूमकर उसने बहुतों को परास्त भी किया था। एक केवल बालि को छोड़ और किसी ने उसका एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर पाया था; जिस पर भी वह इतना अभिमानी रहा कि रामचन्द्रजी के जाने पर भी मरते दम तक कोई दीन वाक्य नहीं बोला। आख़िर रामचन्द्रजी ने उसे मारा और उसके शिर को गृद्धों ने नोंच-नोंच खाया और ठीक वही दशा हुई जो एक अभिमानी की होनी चाहिये।

मैना ने मैना कही मोल बढ़ायो बीस ।
मैं मैं मैं बकरा करी तुरत कटायो शीस ॥
ईश्वरोहं महं भोगी सद्धोऽहं बलवान मुखी अढ्ये,
भिजन वानस्मिको न्योऽस्ति सदृशोमया अहमिति करपणे ।
महाकुल प्रसूतोहं महतां शिष्योऽति विरक्तोस्मि,
नास्ति द्वितीयो मत्सम इत्य भिमाना ॥
अन्यशुभद्वेषः आत्म धिक्कार विशेषो ।
नास्ति काम समो व्याधि नास्ति मोह समो रिपु ।
नास्ति क्रोध समो वन्हिः पाशो लोभ समो नच ॥

८३–चिन्ता.

एक राँड़ के साँड़ थे कि जिनको किसी प्रकार की फिक्र नहीं रहती थी। कारण यह था कि इसकी माँ यद्यपि वेवा थी, पर इतना प्रबल पुरुषार्थ करती कि मनुष्यों से भी अधिक धन अपने परिश्रम से उपार्जन करती थी। तीन-तीन, चार-चार भैंसें, गौवें उनके यहाँ रहा करती थीं, जिससे ख़ूब घी-दूध हुआ करता था। उसका लड़का रोज तीन-तीन पाव घी खाता और पाँच-पाँच छै-छै सेर दूध पिया करता था। वह पाँच-पाँच सौ डंड बैठक किया करता था। इससे वह इतना बलवान् हो गया था कि उस गाँव के राजा के हाथी को जिसके पैर में जंजीर बँधी हुई थी और जब वह हाथी जंजीर घसिलाता हुआ निकलता था तब यह राँड़ का साँड़ पैर के नीचे दबा लिया करता था। राजा के हाथी

की सब कुछ देखभाल की जाती थी, पर वह दिनों दिन दुबला होता जाता था। एक दिन हथवाल से राजा साहब ने पूछा कि क्यों रे हथवाल! यह हाथी क्यों दुबला होता जाता है? तब इसने कहा कि सरकार! इस हाथी की देखभाल में तो कोई कसर नहीं; पर आपके ग्राम में अमुक बेवा का लड़का है। जब मैं आपके हाथी को पानी पिलाने जाता हूँ, तो इस हाथी के पैर में जो जंजीर बँधी रहती है और जब हाथी उसे घिसलाते हुए जाता है, तब वह राँड़ का साँड़ पैर से उसी जंजीर को दबा लेता है। उस समय यह हाथी रुक जाता है। बस इसीसे यह हाथी इतना दुबला है। राजा ने राँड़ के साँड़ की प्रशंसा सुन बुलवाया तो देखा कि वह भी एक बिना सूँड़ का हाथी ही है। राजा ने अपने कर्मचारियों से पूछा कि यह इतना बलवान क्यों है? तब उन्होंने कहा कि सरकार एक तो इसकी बड़ी पुरुषार्थ करनेवाली सदाचारिणी माता है, सो ख़ूब धनोपार्जन करती और अपने बेटे को खिलाती है। दूसरे सब से बड़ी बात यह है कि वह अपने पुत्र के पास किसी प्रकार की चिन्ता नहीं आने देती। यह सुन राजा ने कहा कि इसकी माता से कह दो कि जब-जब उसका लड़का खाने को बैठे तब-तब उससे किसी दिन नमक के लिये, और किसी दिन तेल के लिये कह दिया करे कि बेटा है नहीं, लेते आओ। माता ने वैसा ही किया। जब बच्चा दूसरे दिन खाने बैठा, तो कहा बेटा आज घर में नमक नहीं है, लेते आओ। लड़का माँ की आज्ञा पा नमक ले आया। बस फिर जब दूसरे दिन हाथी निकला और इसने ज़ंजीर दबाई, तो हाथी ठरठराते हुए चला गया, फिर तीसरे दिन बिलकुल ही न रुका। ठीक है—

चिता चिन्ताद्वयोर्मध्ये चिन्त चैव गरीयसी।
चितादहति निर्जीवं चिन्ता दहति सजीवकम् ॥

८४—परस्पर प्रशंसा.

एक बेहना साहब अपनी धनुहीं और मुगरा लिये जा रहे थे। तब इनको इस रूप में देख एक शृगाल ने कहा कि—

कर में धनुष हाथ में बाना। कहाँ चल्यो दिल्ली सुल्ताना ॥

यह सुन बेहना साहब बोले—

बन के राव त्रिकूट के राना। बड़ेन की बात बड़ेन पहिचाना ॥

८५—रण्डीबाजों का धर्म.

एक रंडीबाज एक बार एक रंडी के मकान गये। रात में आपको बड़े जोर से प्यास लगी, तो बोले कि बीबी, हमको बड़े जोर से प्यास लगी हुई है। तब रण्डी ने कहा कि वह मेरे घड़े रक्खे हैं और यह लोटा रक्खा है। सो घड़े से पानी लाकर पी लीजिये। तब यह बोले कि भाई तुम्हारे घड़े का पानी कैसे पियें। यह सुन रण्डी ने कहा यों कीजिये कि मेरे गाल पर पानी डालते जाइये और उसके नीचे अपना मुँह लगा दीजिये और जो गिरता जाय पीते जाइये, फिर तो कोई दोष नहीं। धत्त तुम्हारे धर्मात्माओं का नाश हो। चल भँड़ुये कहीं के, ऐसा धर्म विचारते हो, तो फिर मुझ नानी के यहाँ क्यों आते हो?

८६—झूठा कलंक

पाँच आदमी किसी गाँव से एक दूसरे गाँव को न्योते में गये हुए थे। उन पाँचों के पास लोटा और डोर न थी और पाँचों को इतनी प्रबल प्यास लगी थी कि मारे प्यास के दम निकल रहा था। ज्येष्ठ मास का महीना था। अतः पाँचों ने सोचा कि किसी तरह से पानी पीना चाहिये, अतः अपने-अपने सिर के साफे जोड़ तो रस्सी बनाई। अब उनमें से चार बोले कि जूते के पंजे में थोड़ी गीली मिट्टी लगा दो और फिर जूता फाँस उसके पंजे में पानी अवश्य आ जावेगा। इसलिये उससे प्यास बुझाओ। एक चुप रहा। इस भाँति उनमें से चार ने तो जल पिया; पर एक बोला कि भाई हम जूता के पंजे का जल तो न पियेंगे; अतः उसने न पिया। तब उन चारों ने सम्मति कर उसके गाँव में आकर यह कहा कि इसने कुएँ में जूता फाँस उसके पंजे में जो पानी आया वह इसने पिया। वह बेचारा कहता था कि हमने नहीं; बल्कि इन्होंने ऐसा किया है, सो उस एक की बात किसी ने न मानी और चार की मान ली।

८७—साकार निराकार

एक बार एक धोबी की गधी खो गई थी। उसके कुछ दिन बाद एक कुम्हार का गधा खो गया। आख़िर दो-चार दिन बाद वह कुम्हार का गधा मिला, तब तो धोबी और उस कुम्हार में विवाद होने लगा। वह यह कि धोबी कहता था कि वह गधा मेरा है और कुम्हार कहता था कि यह गधा मेरा है। अन्त में जब वह विवाद यहाँ तक बढ़ गया कि फ़ौजदारी की नौबत

आ गई, तो वह झगड़ा राजा के यहाँ पहुँचा। उस समय राजा ने कुम्हार से पूँछा कि तेरा गधा था, या गधी ? तब कुम्हार ने फ़ौरन उत्तर दिया कि सरकार मेरा तो गधा था। इसके पश्चात् राजा साहब ने धोबी को बुलाकर पूँछा कि क्यों भाई धोबी ! तेरा गधा था, या गधी ? अब तो धोबी दबसेट में पड़ गया कि क्या कहूँ। उसने यह सोचा कि यदि मैं यह कहे देता हूँ कि मेरी गधी थी, तो राजा साहब कहेंगे कि साले देखता नहीं अन्धा है। यह तो गधा है, फिर तू क्यों लड़ता है। ऐसा विचार धोबी ने कहा कि सरकार मेरा तो कुछ गधा था और कुछ गधी थी। बस इसी भाँति हमारे बहुत से भाइयों में कुछ तो यह स्पष्ट कहते हैं कि हमारा ईश्वर तो निराकार है और कुछ कहते हैं हमारा तो कुछ निराकार और कुछ साकार भी है।

८८—ठोकर खाने पर जन्म के लिये प्रतीक्षा

एक शृगाल एक बार ईख के खेत में ईख चूसने गया। बहुत सी ईखें चूसने पर एक ईख को ज्योंही उसने अपने दाँतों के नीचे दबाया कि उसकी जीभ एक चीपुड़ के नीचे दब गई, और जब उसने वहाँ से जीभ खींची, तो ऐसी वह चीपुड़ जीभ में लग गई कि बिलकुल उसकी जीभ ही फट गई। पुनः वहाँ से जाकर उसने एक करुई तोमड़ी लटक रही थी उस पर अपनी जिह्वा को रक्खा, तो वह चिकनी-चिकनी उसे कुछ अच्छी मालूम हुई। अतः उसने उस तोमड़ी को दाँतों से फाड़ जीभ को उसके अन्दर डाल दिया, तो एक तौ वैसे ही जीभ फटी हुई थी कि जिससे उसे कष्ट हो रहा था, दूसरे ज्योंही उसने करुई तोमड़ी में अपनी जीभ डाली तो उसकी जीभ इतनी छरछराई

कि वह विकल हो गया। यहाँ तक कि वह तड़फड़ाता चारों ओर भगा-भगा फिरता था और फिर भी उसे चैन नहीं पड़ती थी। तब वह एक जगह अपनी जिह्वा को भूमि पर रगड़ने लगा। वहाँ कुछ काँटे पड़े हुए थे, जिससे कि उसकी जीभ और भी फट गई। तब वह शृगाल बोला कि— 127

जीवा जीवन्त तौ ऊखन्त ना चुसन्त।
औ ऊखन्तौ चूसन्त तौ लटकन्त न चटन्त॥
और लटकन्तौ चाटन्त तौ घसिलन्त न करन्त॥

८९—हिन्दू.

एक स्त्री बहुत काल से अपने मयके में रहा करती थी। उस का पति वहीं आया जाया करता था। अतः उसके वहीं एक बच्चा उत्पन्न हुआ। उस स्त्री को उसके भतीजे बुआ-बुआ कहा करते थे। अतः उसका लड़का जब बड़ा हुआ, तो अन्य लड़कों के बुआ कहने के कारण वह भी अपनी माँ को बुआ-बुआ कहने लगा। इस पर माता ने उसे कई बार समझाया कि बेटा देखो यह तो मेरे भाई के लड़के हैं और मेरे भतीजे होते हैं, इस कारण मुझे बुआ कहते हैं; पर तुम मेरे पुत्र हो; इसलिये मुझे बुआ न कहा करो; बल्कि अम्माँ कहा करो। इस समझाने पर भी बालक ने न माना। जब माँ ने यह कहा कि देखो बेटा तुमको मैंने कई बार समझाया; पर तुम नहीं मानते हो तब इसने कहा कि माताजी मेरी बहुत दिन कहने की वजह से ऐसी आदत पड़ रही है, इस-लिये मुझे स्मरण नहीं रहता। बस ठीक इसी भाँति मुसलमान भाइयों के हिन्दू कहने से हमारे हिन्दू भाई अपने को हिन्दू

कहने लगे और अब ५८: तक समझाने पर भी कि आपके वेद शास्त्र से लेकर सत्यनारायण की कथा तक में कहीं हिन्दू शब्द नहीं, हाँ यह हिन्दू शब्द मुसलमान भाइयों की गयासुल लुग़ात में आया है कि जिसके माने काफ़िर, डाकू और चोर के लिखे हुए हैं और हमारे ग्रन्थों में तो हर ग्रन्थ में हर जगह अर्य्य शब्द ही आया है और काशी के पण्डित ने भी हिन्दू आर्य्य शब्द व्यवस्था नामक पुस्तक में यह व्यवस्था दे दी है कि हम लोग हिन्दू नहीं, किन्तु आर्य्य हैं और दूसरा सब से बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी काशीजी के विश्वनाथ के मन्दिर के ऊपर यह अक्षर लिखे हुए हैं कि—

आर्य्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः

यदि हम हिन्दू होते तो ऐसा क्यों लिखा जाता, बल्कि यह लिखा जाता कि—

हिन्दू धर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः

पर ऐसा नहीं हुआ ।

अथ चतुर्थो भाग समाप्तम्

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!